I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

मार्च-अप्रैल 2026 * वर्ष 42 - अंक 2

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

• वैचारिकी •

मार्च-अप्रैल 2026 भाग 42 अंक 2

भारत के अद्‌भुत शिल्प

भरहुत स्तूप, सतना (म. प्र.)

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष-प्रधान सम्पादक
डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा
सम्पादक
डॉ. बाबूलाल शर्मा
प्रबंध सम्पादक
शंकरलाल सोमानी

ISSN 0975-6531

वैचारिकी

वर्ष : 42 अंक : 2

धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

मार्च-अप्रैल, 2026 ✷ फाल्गुन शुक्ल 14, - वैशाख शुक्ल 03, वि. सं. 2083

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** 3
- **संपादकीय** 6
- **भारतीय ज्ञान-परम्परा में इतिहास और संवत**
  डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर' 12
- **महामति चाणक्य एवं राष्ट्रीयता**
  प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र (पद्मश्री) 19
- **भरहुत स्तूप अभिलेख : भारतीय इतिहास की एक समस्या एवं समाधान**
  डॉ. ओम प्रकाश लाल श्रीवास्तव 24
- **वैदिक कालीन संगीत में प्रकृति एवं मानव**
  डॉ. वन्दना चौबे 29
- **विश्व शांति और साहित्यकार का दायित्व**
  डॉ. अमरसिंह वधान 34
- **रागदरबारी : समीक्षा के कोण**
  डॉ. प्रीति राय 40
- **रेणुकृत मैला आँचल के सामाजिक सन्दर्भ**
  राजेन्द्र परदेसी 50
- **केदारनाथ सिंह की कविताओं में लोक के सार्वकालिक विम्ब**
  नवनीत 55
- **जैनेन्द्र के उपन्यासों में वैयक्तिक सत्य**
  डॉ. आशा बिष्ट 62
- **दक्खिनी हिंदी के साहित्यकार मुल्ला वजही का 'सबरस' : एक विवेचन**
  डॉ. नूरजहाँ रहमातुल्लाह 67
- **आदिवासी साहित्य और मुख्यधारा का द्वंद्व : 'हम' और 'वे' का विमर्श**
  बबली कुमारी 72
- **राजस्थान के पूर्व जोधपुर राजघराने में सती प्रथा : एक विश्लेषण**
  डॉ. निशा भारद्वाज 79
- **उत्तर-पूर्व भारत में भौगोलिक-जैव विविधता और विकास**
  डॉ. इयाहईया आलहुदा 86
- **पाठक-मंच** (नेताजी की मृत्यु कब हुयी ?- डॉ. रामकिशन पोहिया) 95

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर

12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी

कोलकाता-700 087

दूरभाष : 033-71001614

मो. : 09830559364

ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com

Website : www.bharatiyavidyamandir.org

सदस्यता शुल्क

द्वैवार्षिक 1500/- रुपये

भुगतान

Payee's Name:
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c No. :
32030320176
Bank : STATE BANK OF INDIA
Branch : New Market
IFSC Code No. :
SBIN0004662

- प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
- प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता।

अध्यक्षीय

ग्रीष्म ऋतु का आगमन हो रहा है। केवल हवाओं और वातावरण में ही गर्मी नहीं है, जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों में भी बहुत ही ऊष्णता का अनुभव हो रहा है। मानवता युद्धों से त्रस्त है। अनेक युद्ध और टकराव हो रहे हैं। रूस और यूक्रेन के बीच युद्ध हो ही रहा है और उसमें ईंधन का काम दूसरे देश कर रहे हैं। भारतवर्ष और पाकिस्तान के बीच में एक छोटा-सा युद्ध हो ही चुका है। ईरान के साथ इजराइल और अमेरिका का युद्ध चल ही रहा है। अफगानिस्तान और पाकिस्तान के बीच में भी छोटे-मोटे हमले होते ही रहते हैं। देश में भी कुछ लोगों और राजनेताओं के राजनीतिक महत्वाकांक्षा इतनी बढ़ गई है कि वह वोट की राजनीति के चक्कर में सनातन धर्म, शास्वत संस्कृति और हिन्दुत्व को गुरुत्व मिटा देने की इच्छा रखने वाले लोगों के साथ में खड़े दिखाई देने लगते हैं। हिन्दू और सनातन धर्म भारत वर्ष का अभिन्न अंग और प्राण है, इन कारणों से यह देश-द्रोह-सा प्रतीत होता है तब इनका प्रतिकार करने के लिए देश के कुछ लोग इनसे टकराते हैं। देश के कुछ राष्ट्रभक्त हिन्दू-प्रेमी इनका विरोध करते हैं तो ये हिन्दू विरोधी लोग वातावरण में सरगर्मी पैदा कर देते हैं। देश के अंदर और पास पड़ोस के गजवा-ए-हिन्द की तमन्ना लिए हुए हिन्दू समाज के विरुद्ध षड़यंत्र और आक्रमण करते हैं तो मन में कष्ट भी होता है और क्रोध भी आता है। हिन्दू संस्कृति का मूल भाव जयशंकर प्रसादजी ने कामायनी में इस प्रकार कहा है --- "औरों को हंसते देखो मनु, हंसो और सुख पाओ, अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।"

हमारे देश में साल में चार-पांच जगह चुनाव होते ही हैं। राजनीतिक वातावरण गरमा जाता है। पार्टियां एक-दूसरे के ऊपर बेरोकटोक शाब्दिक प्रहार करती हैं। पड़ोस के देशों में भी राजनीतिक सरगर्मी है। पड़ोस के देशों के साथ-साथ दुनिया के दूसरे देशों में भी जगह-जगह आंतरिक विक्षोभ और अस्थिरता देखने को मिल रही है। इधर तो यह सब बढ़ता हुआ ही लग रहा है ! ऐसा क्यों होता है ? मनुष्य जब अपनी सीमा में न रहकर दूसरे की सीमा का अतिक्रमण कर उसके क्षेत्रों को कब्जा करने की चेष्टा करता है, तो उन देशों के बीच युद्ध होता है। राजनीतिक पार्टियां नीतिसंगत व्यवहार को छोड़कर अतिरेक में आ जाती हैं तो वहां पर भी टकराव बढ़ जाता है। जीवन के दूसरे क्षेत्रों में भी यही परिस्थिति देखी जा रही है, वहां

भी असहिष्णुता बढ़ रही है। छोटी-छोटी बातों पर सड़क चलते मारपीट हो जाती है, स्थिति हिंसक हो जाती है। यह क्यों होता है ?

विज्ञान और प्रौद्योगिकी मनुष्य के लिए बहुत-सी सुविधा पैदा करती है, पर आदमी इन सुविधाओं का अधिक से अधिक अपने ही उपभोग के लिए कामना करने लगता है तो वह दूसरों की सीमा को अतिक्रमण कर लेता है। आदमी अपनी सीमा में रहे तो अच्छा है। एक दूसरे के प्रति सद्भाव का वातावरण रखें तो मनुष्य जाति तेजी से सुख-समृद्धि की तरफ बढ़ सकती है। लेकिन ऐसा लग रहा है जैसे-जैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के जरिये शक्ति संपन्नता आ रही है वैसे-वैसे उसके साथ संघर्ष का वातावरण भी बढ़ने लगा है। दुनिया में शक्तिसम्पन्नता तो बढ़ी, लेकिन उसके साथ संघर्ष भी बढ़ गये हैं। विज्ञान का एक नियम है : लॉ ऑफ एन्ट्रोपी (Law and Entropy)। इस नियम के अनुसार किसी भी तंत्र (System) में अगर शक्ति बढ़ा देते हैं तो उस तंत्र के अणु एक दूसरे से टकराने लगते हैं। कुछ ऐसा ही मैं चारों तरफ देख रहा हूं। अगर इसी तंत्र में शक्ति बढ़ती जाए और उसके साथ में स्ट्रक्चर की मजबूती न हो तो विस्फोट की स्थिति बन जाती है और अगर स्ट्रक्चर सही हो तो गति बढ़ जाती है, विकास बढ़ जाता है। ईंधन वही है -- एक रॉकेट के अंदर डालने पर जिस रॉकेट का स्ट्रक्चर मजबूत होता है, वह हमें चांद और दूसरे ग्रहों तक पहुंचा देता है जबकि बिगड़े हुए स्ट्रक्चर में यही ईंधन उसमें आग लगा सकता है और विस्फोट कर देता है।

क्या भौतिकी (Physics) का यह नियम मनुष्य की चेतना या विचारों पर भी लागू होता है ? यह प्रश्न मेरे मन में बार-बार आता है। चेतना की दुनिया का हमारी स्थूल (Physical) दुनिया से क्या संबंध है ? यह प्रश्न मेरे मन में बार-बार उठता है। इधर शायद हम स्वस्तिवाचन के उस प्राचीन मंत्र को भूल रहे हैं जो सबके मंगल की कामना करता है -

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्चन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।
"स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्वेदाः। स्वस्ति नास्ताक्षरयो अरिष्टनेमिः।
स्वस्ति नो ब्रिहस्पतिरधातु। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः । ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रीनुयाम् देवः"

वैदिक शांति मंत्र संपूर्ण ब्रह्माण्ड में शांति की कामना करता है -- "ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयैः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।" हमारा यह शांति मंत्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में, प्रकृति, जल, वनस्पति और अंतरिक्ष में शांति और संतुलन की कामना करता है।

भारतीय विद्या मंदिर का काम विभिन्न क्षेत्रों के अध्येताओं और समाज के प्रबुद्ध सदस्यों के बीच सेतु बनने अर्थात इंटरफेज बनने का है। विद्वान अध्येताओं और स्कॉलर्स को अपने कोकून से बाहर लाकर उन्हें समाज से जोड़ने का मंच निर्मित करना और उनके बीच सेतु बंधन करना ही भारतीय विद्यामंदिर का प्रमुख उद्देश्य है। विद्वान अध्येतागण जो काम कर रहे हैं, वह दूर से देखने पर पूरी तरह समझ में नहीं आता। उन्हें समाज के निकट लाना और समाज से उनका राब्ता कायम करना ही हमारा मुख्य लक्ष्य है। हम प्रारंभ से ही सबके मंगल की कामना करते रहे हैं। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सबको साथ लेकर चलने की प्रक्रिया और सबकी कल्याण कामना हमारे धर्म और दर्शन का आधार है : ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

भारतीय विद्या मंदिर भारतीय संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहा है।

संस्था के अंतर्गत प्रकाशन केन्द्र व पुस्तकालय के साथ छह विशिष्ट अध्ययन केद्रों की स्थापना की गई है :

1. पुराण एवं इतिहास अध्ययन केंद्र
2. लोक संस्कृति अध्ययन केंद्र
3. विज्ञान और प्रौद्योगिकी एवं समाज से संबंधित अध्ययन केंद्र
4. पुष्टिमार्ग एवं हवेली संगीत अध्ययन एवं प्रशिक्षण केंद्र
5. स्वास्थ्य एवं परिवेश संचेतनता केंद्र
6. आर्थिक आत्म-निर्भरता हेतु कौशल विकास केंद्र

कामायनी में जयशंकर प्रसाद कहते हैं : *'ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की। एक-दूसरे से न मिल सके यह विडंबना है जीवन की'*। ऐसा लगता है जैसे आज भी 'ज्ञान' और 'क्रिया' भिन्न हैं। इसका अनुकूलतम संयोग ही एक स्वस्थ और प्रगतिशील समाज की रचना के लिए और पृथ्वी के समस्त जीवों के लिए कल्याणकारी होगा। अतः इन केन्द्रों के अंतर्गत भी हमारा मूल उद्देश्य विद्वानों, कलाकारों और समाज को एक दूसरे के करीब लाना है ताकि एक सुसंस्कृत और समरस समाज की रचना की जा सके।

संस्था का कौशल विकास का कार्य तेजी से अग्रसर है। भारतीय विद्या मंदिर इंस्टीट्यूट ऑफ अप्लाइड टेक्नोलॉजी की स्थापना भी शीघ्र ही की जायेगी। हमारे यहां से प्रशिक्षित कर्मी बेहतर भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं। उम्मीद है कि हम इस कार्य को और आगे बढ़ाएंगे तथा कोलकाता में ही नहीं, देश में दूसरे स्थानों पर भी ऐसे प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना करेंगे।

अंत में हम कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) के प्रशिक्षण पर भी विचार कर रहे हैं। इसी तरह जो निर्माण हो चुका है और जो जर्जर होता जा रहा है उसका रख-रखाव और नवीनीकरण का प्रशिक्षण देने का काम भी हाथ में लेने का विचार है।

..... और अंत में एकदम निजी बात.....यह जिंदगी भी एक अजीब चीज है। जीवन के 40 वर्ष धीरे-धीरे चलते हुए लगते हैं, जैसे - क्रिकेट टेस्ट मैच। 40 की उम्र पार हो जाती है उसके बाद लगता है काम भी बढ़ जाता है और गति भी बढ़ जाती है। समय थोड़ा तेजी से निकलता जाता है, जैसे -- एक दिवसीय क्रिकेट इंटरनेशनल। फिर 70-75 की उम्र के बाद लगता है कि उम्र निकलती जा रही है, जो करना है तेजी से कर लो, जैसे - टी 20 का मैच। 84 की उम्र में मुझे प्रतीत होता है कि ओवर तो 5-6 ही बचे हैं, जितने रन बन सकें उतने बना लो।

- डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

●

विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही हथियार हैं।

- बर्नार्ड शॉ

संपादकीय

नव सृजन लिए, उत्फुल्ल, उल्लासपूर्ण तथा अत्यंत सुखदायी वसंत ऋतु में नव वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को प्रारम्भ नववर्ष विक्रम संवत् 2083 में आप सबको 'वंदेमातरम्', सब प्रकार से हमारे जीवन को उदारतापूर्वक धारण करने वाली मातृभूमि को नमन। यही भूदेवी शक्ति रूपा हैं जिनकी विभिन्न नामों से, नववर्ष के प्रारम्भिक नौ दिन वार्षिक नवरात्र के रूप में हम आराधना करते हैं। आइए शुभकामना करें कि निष्ठापूर्वक प्रतिबद्ध हो संगठित होकर अपनी मातृभूमि, अपने राष्ट्र को समृद्ध, सुदृढ़ कर गौरव सम्पन्न करें और इसके लिए उपलब्धियां प्राप्त कर अपने जीवन को भी सार्थक करें। इस संकल्प की पृष्ठभूमि में उन उपलब्धियों का स्मरण करते रहना चाहिए जिनको प्राप्त कर हमारे पूर्वजों ने राष्ट्र को गौरवान्वित करने में अपना योगदान दिया। उदाहरणार्थ आइए अपनी कुछ उन वैज्ञानिक उपलब्धियों को याद करें जिन्होंने विश्व को ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर दिया, जिससे हमारा देश विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

हमारी प्राचीन वैज्ञानिक परंपराओं में खगोल विज्ञान को सर्वाधिक महत्व दिया गया। वेदों, उपनिषदों, पुराणों और ज्योतिष शास्त्रों में खगोल विज्ञान का गहन विश्लेषण मिलता है। ऋग्वेद में सूर्य, चंद्र और नक्षत्रों की गति का वर्णन है, जो समय मापन और ऋतु चक्र को समझने में सहायक बना। हमारे वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की गोल संरचना, उसके सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने और ग्रहणों की व्याख्या की, जिसे समझने और मानने में बाकी दुनिया को सैकड़ों वर्ष लग गए। प्राचीन भारतीय खगोल विज्ञान न केवल हमारी सांस्कृतिक धरोहर है, बल्कि आधुनिक विज्ञान और जीवन में भी प्रासंगिक है। ऋग्वेद (10.85.3) में कहा गया है कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसकी परिक्रमा करती है। यह आधुनिक खगोलशास्त्र की हेलियोसेंट्रिक थ्योरी से मेल खाता है, जिसे यूरोप में कोपरनिकस ने 16वीं शताब्दी में प्रतिपादित किया। अथर्ववेद (19.53.3) में ग्रहों की गति और उनके मार्गों (कक्षाओं) की चर्चा की गई है। यजुर्वेद (33.43) में पृथ्वी के घूर्णन का संकेत मिलता है। ऋग्वेद और महाभारत में सूर्य और चंद्र ग्रहण की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। महर्षि कात्यायन (ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी) ने बताया कि ग्रहण का कारण राहु और केतु जैसे छाया ग्रह हैं, जो वास्तव में पृथ्वी और चंद्रमा की छाया के प्रभाव को दर्शाते हैं। आधुनिक विज्ञान पृथ्वी और चंद्रमा के आमने-

सामने आने पर उनकी छायाओं से ग्रहण होता है, इन्हें ही राहु-केतु कहा गया है।

भारतीय खगोल विज्ञानियों में सबसे पहला नाम आर्यभट्ट (476-550 ईस्वी) का है जिन्होंने आर्यभटीय व आर्य सिद्थांत ग्रंथों में खगोल विज्ञान और गणित के सिद्धांत प्रस्तुत किए। इनमें पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा और अपने अक्ष पर घूमने के बारे में बताया तथा ग्रहण को समझाया। सूर्य से ग्रहों की दूरी की गणना भी की। पृथ्वी के घूर्णन का सिद्धांत आज खगोल विज्ञान और भौतिकी का आधार है। उनकी गणनाएं भी इंजीनियरिंग, नेविगेशन और अंतरिक्ष विज्ञान में उपयोगी साबित हुई हैं। 505-587 ईस्वी के दौरान वराहमिहिर ने बृहत संहिता और पंचसिद्धांतिका ग्रंथ लिखे तथा सूर्य सिद्धांत, रोमक सिद्धांत, पौलिस सिद्धांत, वसिष्ठ सिद्धांत और पितामह सिद्धांत का संकलन किया। सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की गति से मौसम का अनुमान लगाना सिखाया। उनकी तकनीकें आज मौसम विज्ञान में उपयोग होने वाली विधियों के लिए प्रेरणा कही जाती हैं।

भास्कराचार्य (1114-1185 ईस्वी) ने सिद्धांत शिरोमणि ग्रंथ लिखा जिसमें लीलावती, बीजगणित और गोलाध्याय विषय रखे। इन्होंने गुरुत्वाकर्षण के लिए कहा कि पृथ्वी वस्तुओं को अपनी और खींचती है और एक वर्ष 365.2588 दिन का बताया जो आधुनिक गणना के करीब है। गुरुत्वाकर्षण पर उनका कथन न्यूटन से सैंकड़ों वर्ष पहले आ गया था। ब्रह्मगुप्त (598 से 668 ईस्वी) ने ब्रह्मस्फुटसिद्धांत ग्रंथ लिखा जिसमें पृथ्वी की परिधि का अनुमान लगाया गया है। पृथ्वी की परिधि पर उनका शोध कार्य समय से आगे की खोज साबित हुआ है। गणित में दशमलव पद्धति के आविष्कार का श्रेय भारतीय गणितज्ञ आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त को जाता है। आर्यभट्ट ने आर्यभटीय में संख्याओं को एक स्थानिक मान के साथ लिखा, जो दशमलव प्रणाली का आधार बना। उन्होंने 1, 10, 100, 1000 जैसी संख्याओं की गणना करने का तरीका विकसित किया। उनसे प्रेरित होकर बाद के भारतीय गणितज्ञों ने दशमलव को और स्पष्ट रूप से परिभाषित किया। ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुटसिद्धांत में शून्य और दशमलव प्रणाली के नियम स्पष्ट किए। बताया कि किसी संख्या को शून्य से गुणा करने पर उत्तर शून्य ही होगा। यह प्रणाली बाद में अरब व यूरोप तक पहुंची, जिससे आधुनिक गणित की नींव पड़ीं।

8वीं शताब्दी में अरब विद्वानों ने भारतीय गणित-ग्रंथों का अनुवाद किया। प्रसिद्ध अरब गणितज्ञ अल-ख्वारिज्मी ने भारतीय दशमलव प्रणाली को अपनाया और इसे इस्लामी जगत में लोकप्रिय बनाया। फ्रांसीसी गणितज्ञ पियरे साइमन लाप्लास ने लिखा कि भारतीयों ने संख्याओं को अभिव्यक्त करने के लिए एक सरलतम प्रणाली विकसित की, जो अब पूरे विश्व में उपयोग की जाती है। कार्ल सेगन ने कहा, भारतीय परंपरा में ब्रह्मांड की उम्र और विशालता को समझने की कोशिश बहुत आगे की थी। भारतीयों ने ब्रह्मांड और समय को विज्ञान तथा गणित से जोड़ा। भौतिक व खगोलशास्त्री जॉर्ज गमोव ने भारतीय खगोल विज्ञान को ब्रह्मांड की उत्पति समझने का एक प्राचीन प्रयास बताया है। कहा कि वेदों में ब्रह्मांड के समय का विचार बिग-बेंग सिद्धांत से मिलता-जुलता है। महान वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग ने अपनी किताब ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम में प्राचीन सभ्यताओं के खगोल ज्ञान का जिक्र करते हुए भारतीय ज्ञान परम्परा में ग्रहों व ब्रह्मांड को समझना, मानव की शुरुआती कोशिश बताया है। नोबेल विजेता खगोलशास्त्री सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर ने प्राचीन भारतीय खगोल विज्ञान को प्रेरणा माना और भास्कराचार्य व आर्यभट्ट की गणनाओं एवं तारों व ग्रहों के अध्ययन को विज्ञान की शुरुआत बताया। ब्रिटिश खगोलशास्त्री फ्रेड हॉयल ने कहा कि वेदों में ब्रह्मांड की विशालता का वर्णन आधुनिक विज्ञान से मिलता है, आर्यभट्ट की खोजें अपने समय में अहम थी।

पूर्व मिसाइल वैज्ञानिक और लेखक प्रो. अरुण तिवारी लिखते हैं कि वेदों, विशेष रूप से ऋग्वेद में नासदीय सूक्त और कई ऋचाएं हैं जो अपने समय से बहुत आगे की खगोलीय समझ को दर्शाती हैं। संस्कृत शब्द

'ज्योतिष' खगोल विज्ञान और उसके अध्ययन को संदर्भित करता है। यह वैदिक साहित्य का अभिन्न अंग था जो वैदिक और दैनिक जीवन को सितारों और खगोल विज्ञान तथा धार्मिक अनुष्ठानों को ग्रहों के अध्ययन से जोड़ता था। वेदों को सुनने वाले सात ऋषियों- भृगु, वशिष्ठ, अंगिरस, अत्रि, पुलस्त्य, पुलुशा और क्रतु को तारों के रूप में मंडित किया गया। वशिष्ठ की पत्नी अरुंधति को भी सप्तर्षि मंडल में मिलाया गया। सप्तर्षि ध्रुव तारे के चारों ओर घूमते हैं, जिसकी स्थिति कभी नहीं बदलती। इसका उपयोग दिशा-बोध के लिए होता था। इसरो भी इससे प्रेरित हो आधुनिक अंतरिक्ष अन्वेषण कर रहा है। यूरोप में गैलीलियो (1564-1642) को रोमन कैथोलिक चर्च ने दंडित किया। वजह थी, चर्च का बनाया खगोलीय मॉडल जिसमें पृथ्वी केंद्र में थी और सभी खगोलीय पिंड पृथ्वी के चारों ओर घूमते माने गए थे। गैलीलियो ने इसे गलत करार दिया। खास बात है कि भारत में यह मॉडल तो आठ शताब्दी पहले ही स्थापित किया जा चुका था। इसी तरह कई सदियों बाद पश्चिम ने सप्तर्षि मंडल को भी बिग डॉपलर कहने में कोई संकोच नहीं किया। तारों के नाम अलकाइड, मिजार, अलीओथ, मेरेज, फेकडा, मेराक और धुबे कर दिए गए। अरुंधति को अलकोर बना दिया गया। भारतीय चक्रीय समय में विश्वास करते थे। इसमें ब्रह्मांड सृजन और विनाश के निरंतर चक्रों से गुजरता है। 'कल्प नामक यह अवधारणा अरबों वर्षों तक फैली है। 13.8 अरब वर्ष पहले, तारे या आकाशगंगाएं नहीं थीं और हमारा ब्रह्मांड केवल गर्म प्लाज्मा का गोला था- इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और प्रकाश का मिश्रण। इसे वेदों में हिरण्यगर्भ कहा गया जिससे फिर एक स्वर (नाद) उभरा जिसे ओंकार कहा गया।

पर्यावरणविद् डॉ. राजाराम त्रिपाठी का कहना है कि साल के किस समय बारिश होगी, कब सर्दी आएगी और कब गर्मियां, यह सब हमारे पूर्वजों ने अंतरिक्ष में ग्रहों और सूर्य की गति और स्थिति को दर्ज करके बताना शुरू कर दिया था। कृषि में संवत्सर आधारित ज्ञान भी अद्‌भुत ढंग से उपयोगी साबित हुआ। वराहमिहिर की बृहत्संहिता में मौसम के पूर्वानुमान के वैज्ञानिक सिद्धांत दिए गए हैं।

इसरो के पूर्व अध्यक्ष एस सोमनाथ ने आइआइएम अहमदाबाद के 60वें दीक्षांत समारोह में कहा था कि भारत ने वैदिक काल से लेकर आधुनिक प्रगति तक ब्रह्मांड की वैश्विक समझ बढ़ाने में योगदान दिया। भारत में लिखे गए महासलीला और सूर्य सिद्धांत जैसे प्राचीन ग्रंथ इसके साक्ष्य हैं। भारत दुनिया का पहला ज्ञान-स्रोत है। यहां जो खगोल विज्ञान, भूगोल, गणित, धातु विज्ञान और दर्शन को वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि मिली। यह सब उस समय की बाकी दुनिया से कहीं आगे था। प्राचीन ग्रंथ महासलीला, ब्रह्मांड की उत्पति के मूल पर एक संस्कृत पाठ्य-पुस्तक है। यह ब्रह्मांड के निर्माण के वैज्ञानिक तरीके के बारे में खूबसूरती से बात करती है। दूसरी ओर सूर्यसिद्धांत है। इससे मैं बहुत करीब से जुड़ा हुआ महसूस करता हूं। इसमें ग्रहीय गति, कक्षा आदि शामिल हैं। सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों का वर्णन खूबसूरती से किया गया है। इसमें की गई गणनाएं वर्तमान मानकों के हिसाब से काफी सटीक हैं। भारतीय दर्शन ने न केवल भौतिक प्रगति पर बल दिया, बल्कि आध्यात्मिक प्रगति पर भी जोर दिया।

इस प्रसंग में 19 जुलाई 1938 को जन्मे प्रसिद्ध गणितज्ञ एवं खगोलभौतिकी के विशेषज्ञ श्री जयंत विष्णु नारलीकर (पद्मविभूषण) सश्रद्ध स्मरणीय हैं जिन्होंने भारतीय वैज्ञानिक उपलब्धियों को भी अपने लेखन का विषय बनाया जो 20 मई 2025 को हमारे बीच नहीं रहे- हार्दिक श्रद्धांजलि। नारलीकरजी ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'भारत की विज्ञान यात्रा' में भारत में हुई वैज्ञानिक उपलब्धियों का तथ्यात्मक वर्णन किया है।

वैदिक काल (1500 ई.पू. 200 ई.पू.) में शुल्व सूत्रों की रचना एक वैज्ञानिक उपलब्धि थी, जिनसे ज्यामिति का जन्म हुआ। शुल्व अर्थात रस्सी या सूत्र, जिसका प्रयोग देवताओं के आह्वान एवं उन्हें यज्ञ भाग अर्पित

करने के निमित्त बनाने वाली विविध माप वाली यज्ञ वेदियों के निर्माण के लिए किया जाता था। वेदों के छह अंगों में से छठे अंग वेदांग कल्प में शुल्व सूत्र वर्णित हैं। उल्लेखनीय है कि बाद में इस शुल्व का प्रयोग स्थापत्य-वास्तु, चित्रांकन आदि में महत्वपूर्ण रहा और है। इन शुल्व सूत्रों में पश्चात कालीन यूनानी पाइथोगोरस का प्रमेय पाया जाता है जिसे 'शुल्व प्रमेय' कहना चाहिए।

वैदिक काल में विकसित गणितीय ज्ञान और ज्योतिष तत्कालीन महान वैज्ञानिक उपलब्धि थी। यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और वाजसनेयी संहिता में बड़ी संख्याओं को दशमलव प्रणाली में 10 के घात से वर्णित किया गया है, इसके अंतर्गत अधिकतम संख्या 10^{19} मानी जाती है। नोबेल पुरस्कार प्राप्त श्री अब्दुस्सलाम ने 1967 में अपने एक व्याख्यान में बताया था कि बारह सौ वर्ष पूर्व दूसरे अब्बासी खलीफा अब्दुल्ला -अल-मंसूर ने अपनी नई राजधानी बगदाद (ईराक) की स्थापना के अवसर पर एक अंतरराष्ट्रीय विज्ञान सम्मेलन का आयोजन किया था। इसमें यूनानी, नेस्टोरियन, बेजेंटाइन, यहूदी और हिंदू विद्वानों को आमंत्रित किया गया था। खलीफा बेहतर खगोल सारणियां तैयार करवाना तथा पृथ्वी की परीधि मापने का बेहतर तरीका जानना चाहते थे। परन्तु सम्मेलन में उपस्थित खगोलविद कोई तरीका नहीं बता सके। इस सम्मेलन में भारतीय खगोलविद् आचार्य कंक ने हिंदू संख्याओं पर आधारित अपना लेख पढ़ा। ये संख्याएं शेष विश्व के लिए अज्ञात थी। इस लेख ने गणितीय सोच की सम्पूर्ण धारा ही बदल गई।

1881 में पेशावर के निकट तक्षशिला (रावलपिंडी) से 70 किमी दूर बक्षाली गांव में हुए उत्खनन में एक 70 पृष्ठों की भोजपत्र-पांडुलिपि प्राप्त हुई थी, जिसमें शारदा लिपि में एक प्राकृत गाथा लिखी हुई है जो 200 ई.पूर्व कुषाणों के शासनकाल में प्रचलित थी। यह गाथा उस समय भारत में अंकगणित व बीजगणित का उच्च स्तर दर्शाती है।

वेदों के षडांगों (छह अंगों) में से पांचवां 'वेदांग ज्योतिष' भारत की सर्वप्रथम ज्योतिष-पुस्तक है जिसे ऋषि लगध द्वारा विकसित माना जाता है। इसके अनुसार पृथ्वी लगभग 67 डिग्री कोण के झुकाव से सूर्य की परिक्रमा कर रही है। विश्वविख्यात ज्योतिषी वराहमिहिर (530 ईस्वी) द्वारा नक्षत्राधारित ऋतुओं की समयावधि दी गई है, उससे विदित होता है कि लगध के काल से पृथ्वी के झुकाव में लगभग 23 डिग्री का अंतर आ गया। एक डिग्री के परिवर्तन में 72 वर्ष लगते हैं। अतः लगध का काल वराहमिहिर से 1630 वर्ष पहले हो जाता है। इस तरह वेदांग ज्योतिष का काल ईसा पूर्व 1150 हुआ। वेदांग ज्योतिष समय का पैमाना व कलेंडर संबंधी आंकड़े उपलब्ध कराता है। जैसे एक युग 5 सौर वर्षों के बराबर होता है जिसमें चंद्रमा की 67 परिक्रमाएं होती हैं, जिनमें 1830 दिन लगते हैं। इसी तरह अन्य गणनाएं हैं। इनके आधार पर वैदिक यज्ञानुष्ठान हुआ करते थे। पूर्व वैदिक काल में ज्योतिषीय गणनाएं थी। ऋग्वेद के अनुसार ऋषि अत्रि के परिवार को इनका ज्ञान था।

दस्तावेजों में दर्ज तथ्यों से 5वीं शताब्दी ईस्वी से भारत में खगोल विज्ञान की प्रगति की झलक प्राप्त होती है, जिसमें 476 ई. में जन्मे प्रख्यात गणितज्ञ व खगोलविद् आर्यभट का अभूतपूर्व योगदान रहा जिन्होंने 499 ई. में आर्यभटीय ग्रंथ लिखा जिसमें त्रिकोणमितीय ज्या फलनों की सारणी भी दी गई है। आर्यभट पृथ्वी के गोल आकार और उसके अपनी धुरी पर घूमने के तथ्य से परिचित थे। एक श्लोक में लिखा है कि तारे स्थिर हैं, परंतु हमें वे पश्चिम की ओर गतिमान दिखाई देते हैं, क्योंकि हम उन्हें अपनी धुरी पर घूम रही पृथ्वी से देख रहे हैं। आर्यभट के बाद खगोलविद् ब्रह्मगुप्त हुए। अरब के प्रसिद्ध विद्वान अबू-रेहन- मोहम्मद-इब्न-अहमद अल-बरुनी (973-1050) ने इनके ग्रंथों 'ब्रह्म सिद्धांत' का 'सिंध-हिंद' तथा 'खंड-खायक' का 'अल्-अरकंद' नामों से अनुवाद कराया। उन्होंने ब्रह्माण्ड अवलोकन के लिए अनेक उपकरण भी तैयार किए थे। कर्नाटक के राष्ट्रकूट

राजा अमोघवर्ष नृपतुंग (815-878 ई.) के दरबारी जैन गणितज्ञ महावीर ने 'गणित सार संग्रह' ग्रंथ की रचना की जिसमें अनेक गणितीय परिणामों तथा समस्याओं को दर्शाया गया है। 12वीं शताब्दी में हुए गणितज्ञ एवं खोगलविद भाष्कर द्वितीय ने अपनी गहरी गणितीय क्षमता का परिचय देते हुए अनेक गणितीय समीकरणों के हल प्रस्तुत किए। उनका प्रसिद्ध काव्यात्मक ग्रंथ 'लीलावती' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि उसमें गणित जैसे जटिल विषय को सरल-सहज ढंग से समझाते हुए समीकरणों को अपने आसपास के जीवन-दृश्यों से संयुक्त कर प्रस्तुत किया है। भास्कर द्वारा गणितीय तकनीकों का खगोल विज्ञान में प्रयोग का काम उनके 'ग्रहणितम्' तथा गोलाध्याय में वर्णित है।

गणित और खगोल विज्ञान में भारतीय विद्वान वैज्ञानिकों के स्तुत्य योगदान के साथ ही आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान) में भारतीय विद्वानों का योगदान उल्लेखनीय है। ऋग्वेद में चिकित्सा पद्धति तथा वैद्यवर अश्विनी का उल्लेख है। पुरातात्विक उत्खनन में चिकित्सा उपकरण मिले हैं जो 3000 ई. पूर्व सिंधु घाटी सभ्यता में इस्तेमाल किए जाते थे। उस समय यह भी माना जाता था कि दुष्ट आत्माएं रोगी बना देती हैं। आयुर्वेद के चार आधारभूत ग्रंथ हैं-- चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टांगहृदय तथा अष्टांगसंग्रह। इनमें से चरकसंहिता सर्वाधिक लोकप्रिय है। 'चरक' संभवतः कोई व्यक्ति रहा होगा परंतु फिर इस नाम पर एक जाति का नाम हो गया, जिसका कृष्ण यजुर्वेद में वर्णन है। 7वीं शताब्दी ईसापूर्व अर्थात लगभग 2700 वर्ष पूर्व संकलित इस ग्रंथ में चिकित्सा को 8 भागों में बांटा गया है जिनमें शल्य चिकित्सा भी है। इस ग्रंथ के मूल भाग का रचनाकाल निश्चित करना कठिन है। हालांकि महाभारत (13.4.54) में सुश्रुत के पिता विश्वमित्र का उल्लेख है। इस पुस्तक में भारतीय चिकित्सा विज्ञान का इतिहास भी वर्णित है और लिखा है कि सुश्रुत वाराणसी के राजा दिवोदास के गुरु थे। 9-10वीं शताब्दी में एशिया-यूरोप की अनेक भाषाओं में इस ग्रंथ का अनुवाद हुआ। माना जाता है कि बौद्ध काल में शल्य-चिकित्सा का ह्रास हुआ क्योंकि बौद्ध धर्म में हिंसा (चीरफाड़) का निषेध किया जाने लगा था। हालांकि भगवान बुद्ध के समय में ही जीवक नामक प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक थे।

गणितज्ञ और खगोल भौतिकी के विशेषज्ञ विद्वान डॉ. नारलीकर ने भारतीय वैज्ञानिक प्रगति का तथ्यात्मक इतिहास लिखा है जिसमें उन्होंने लिखा है कि ईस्वी प्रथम सहस्राब्दी के अंत तक खगोल विज्ञान, गणित तथा चिकित्सा विज्ञान (शल्य चिकित्सा सहित) में काफी प्रगति हुई। परंतु वर्तमान में उस प्रवृत्ति से सावधान भी किया है जिसमें लोग वर्तमान वैज्ञानिक उपलब्धियों को लेकर बिना सोचे-समझे दावा कर देते हैं कि ये तो हमारे यहां प्राचीनकाल से ही हैं। ऐसे लोग अपने दावों की पुष्टि के लिए रामायण, महाभारत, असंख्य पुराणों और इसी तरह के अन्य ग्रंथों का उल्लेख करते हैं, जिनकी कल्पनाशीलता के आगे आधुनिक विज्ञान कथाएं तक पानी भरने लगें। विडम्बना है कि ऐसे लोगों में अधिकांश ने इन ग्रंथों को पढ़ा-समझा ही नहीं है। राजा भोज (11वीं शताब्दी) की रचना मानी जाने वाली 'समरांगण सूत्रधार' तथा ऋषि भारद्वाज की रचना मानी जाने वाली 'वृहद विमान शास्त्र' को लेकर हास्यास्पद दावे किये जाते हैं। विमान का अर्थ खिड़की, झरोखा आदि है और इसका संबंध बड़े भवनों की सुन्दर वास्तुकला से है, परंतु विमान का अर्थ वायुयान भी होता है, बस इसी को लेकर कह दिया जाता है कि हमारे यहां तो प्राचीन काल में ही हवाईजहाज निर्माण का विज्ञान था। रामायण के पुष्पक विमान तथा रामायण-महाभारत की कथाओं में एक से एक विकट अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख कर प्राचीनकाल में रहे मंत्र-विज्ञान पर गर्व किया जाता है? वस्तुतः ब्राह्मणों ने अपने धंधे के लिए वैदिक और बाद में रचित मंत्रों को सर्वशक्तिमान प्रचारित किया कि देवता भी इन मंत्रों के अधीन हैं और मंत्र हम ब्राह्मणों के अधीन हैं, अतः हम भूदेव हैं जो मंत्रों के द्वारा कुछ भी कर-करवा सकते हैं। इस तरह उन्होंने गणित, खगोल

अथवा ज्योतिष में हुई प्रगति को अपने उदरपोषण के उद्देश्य से कुंद कर इसे टोना-टोटका बना दिया। आध्यात्मिक औपनिषदीय विज्ञान, कर्मकांडी पाखंड के सामने गौण हो गया। विश्व को ज्ञान-विज्ञान से संबंधित प्रदेय ने इंडिया या हन्दुस्तान या भारत को विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठित किया। बौद्ध धर्म ने पूरे दक्षिण एशिया में व्याप्त होकर इसे विश्वगुरु बना दिया, परंतु 9वीं शताब्दी में आचार्य शंकर ने अपनी प्रखर प्रतिभा का इसके विरुद्ध प्रयोग कर इसे भारत से ही लगभग निष्कासित कर दिया, बौद्ध धर्म के कारण बेरोजगार ब्राह्मणों ने उनको जगतगुरु घोषित कर दिया, हालांकि वे कितने जगत के गुरु हो सके? हां उन्होंने हिन्दू धर्म के रक्षार्थ चार जगतगुरु पीठ स्थापित किए, जहां विराजमान करोड़पति पीठाधीश जगतगुरुओं ने गत बारह सौ वर्षों में धर्म-रक्षार्थ क्या किया, पता नहीं! ईस्वी प्रथम सहस्राब्दि तक यह देश विश्वगुरु रहा, परंतु फिर अपनी झूठी (काल्पनिक) उपलब्धियों पर गर्व करते हुए भौतिक वैज्ञानिक उपलब्धियों को निकृष्ट तथा अवहेलनीय कह कर पतित होकर आतताइयों का गुलाम होता गया। अब देश को फिर विश्वगुरु बनाने के नारे लगाए जा रहे हैं, परन्तु नारों से हो जाएंगे क्या? **आइए इस नववर्ष में फिर से विश्वगुरु बनने के लिए संकल्पित हों।**

- डॉ. बाबूलाल शर्मा

"वैचारिकी" पत्रिका के स्वामित्व आदि की घोषणा
(प्रपत्र 4 - नियम 8)

1. प्रकाशन का स्थान	:	भारतीय विद्या मंदिर 12/1 नेली सेनगुप्ता सरणी, कोलकाता-700087
2. प्रकाशन की आवृत्ति	:	द्वैमासिक
3. मुद्रक - प्रकाशक	:	नाम - शंकरलाल सोमानी, राष्ट्रीयता - भारतीय
	:	पता - सचिव, भारतीय विद्या मंदिर 12/1 नेली सेनगुप्ता सरणी, कोलकाता-700087
4. संपादक	:	नाम - डॉ. बाबूलाल शर्मा, राष्ट्रीयता -भारतीय
5. उन व्यक्तियों, संस्थाओं आदि के नाम जो पत्र के स्वामी और साझेदार हैं अथवा कुल पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के अंशधारक हैं।	:	भारतीय विद्या मंदिर, कोलकाता

मैं शंकरलाल सोमानी एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर दिया गया विवरण मेरी जानकारी व विश्वास के अनुसार सही है।

ह. शंकरलाल सोमानी
सचिव - भारतीय विद्या मंदिर
12/1 नेली सेनगुप्ता सरणी,
कोलकाता-700087

31 मार्च 2026

भारतीय ज्ञान-परम्परा में इतिहास और संवत

डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर'

इतिहास का सम्बन्ध अतीत से है। जो जातियाँ अपने अतीत के ज्ञान से अपने वर्तमान को मंगलकारी और भविष्य को भव्य नहीं बना सकतीं उनका अस्तित्व स्थायी नहीं रहता। भारतीय समाज के सम्बन्ध में यह दुर्दान्त और षड़यन्त्रकारी भ्रम फैलाने का प्रयास सदियों से विदेशियों और उनके चरण चुम्बनकर्ता एजेण्डावादी तथाकथित इतिहासकारों द्वारा किया जाता रहा है कि भारतीय इतिहास से अपरिचित थे और इतिहास लेखन से अनभिज्ञ। इस योजनाबद्ध कुप्रयासित भ्रम से बाहर आने का मार्ग यही है कि यह देखा जाय कि प्राचीन भारतीय ज्ञान-परम्परा में 'इतिहास' शब्द का प्रयोग है या नहीं और अगर वह है तो उसका अर्थ क्या है। अथर्ववेद में कहा गया है - 'स वृहतीं दिशामनुव्यचलं त। तमितिहासश्च पुराणं च गाथाशच नाराशंसीश्चानुव्यचलन। इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीना च प्रियं धाम भवति एव वेद।"[1] (महत्वाभिलाषी पुरुष जब (वृहतीम) महत्य की ओर चलता है, तब इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी उसके अनुयायी बन जाते हैं एवं इस बात को जो पुरुष जानता है, वह इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी एवं वेद का प्रिय धाम (वास स्थान) बन जाता है)। इसी तरह छान्दोग्योपनिषद में गुरु सनत्कुमार देवर्षि नारद को उपदेश देते हुए कहते हैं -'विज्ञानेन वा ऋग्वेद विजानीति यजुर्वेद। सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चम"[2] (विज्ञान में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास पुराण का तत्व ज्ञात होता है)।

स्पष्ट है कि वैदिक युग में ही इतिहास शब्द प्रचलन में था। अब यह देखना उचित होगा कि क्या प्राचीन काल में प्रयुक्त इतिहास शब्द का अर्थ वही था जो आज इस शब्द का है। 10 हजार शब्दों वाले भारत के प्रथम समांतर कोष (जिसे राजबली पाण्डेय ने पहली शताब्दी ई.पू. की रचना माना है) 'अमर कोष' में इतिहास को पुरावृत्त कहा गया है - 'इतिहास पुरावृत्तं (उदात्ताद्यास्त्रयश्वराः)"[3](इतिहास पुरावृत्त ये दो पुरातन चरित (महाभारत आदि) के नाम हैं)। वस्तुतः इतिहास शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है : इति-इस प्रकार, ह-निश्चित, आस-था अर्थात प्राचीन काल में ऐसा हुआ था। वामन शिवराम आप्टे ने 'इतिहास' शब्द का अर्थ बताया है - इतिहास {इति + ह + आस (अस धातु लिट् लकार अन्य पुरुष, एक वचन)} परम्परा से प्राप्त उपाख्यान समूह, इतिहास, वीर गाथा, ऐतिहासिक साक्ष्य परम्परा (जिस को पौराणिक प्रमाण मानते हैं)[4]

अथर्ववेद के मंत्रों में इतिहास के साथ पुराण, गाथा और नाराशंसी इन तीन शब्दों का प्रयोग और हुआ है। इन चारों शब्दों की अर्थ- भिन्नता से गुजरकर ही हम इनके मूल तत्व तक पहुँच सकते हैं। (1) इतिहास - इतिहास का सम्बन्ध अतीत काल से है उसमें केवल अतीत में घटित घटनाओं का यथातथ्य वर्णन होता है। अतीत की केवल वे घटनाएँ इतिहास का हिस्सा बनती हैं जिनका प्रभाव व्यापक रूप से समाज पर पड़ा हो। इसमें घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन होता है। (2) गाथा - सामान्यतः दो शब्द प्रचलित हैं वेद और लोक। जिसका सम्बन्ध वेद या शास्त्र से न हो परन्तु लोक में जो प्रचलित हो ऐसी कथा या काव्य को 'गाथा' कहते हैं।[5] आप्टे जी ऐसे धार्मिक श्लोक या छन्द को गाथा मानते हैं जो वेदों से संबंध न रखता हो। हिन्दी में इसके अर्थ- स्तुति, प्रशंसा, कथा, वृतान्त आदि-आदि हैं। (3) नाराशंसी - नाराशंसी का अर्थ मनुष्यों की प्रशंसा है। वेदों के वे मंत्र जिनमें राजाओं के दान आदि की प्रशंसा है उन्हें भी नाराशंसी कहा जा सकता है।[6] इस दृष्टि से अपने-अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में चारणों या कवियों द्वारा लिखे गए ग्रन्थ भी नाराशंसी कहे जाएँगे। (4) पुराण - पुराण का संबंध भी पुरातन कालीन घटनाओं से है परन्तु पुराण और इतिहास में अन्तर यह है कि इतिहास केवल सत्य घटनाओं का वर्णन करता है परन्तु पुराण में कल्पना, अतिशयोक्ति और अतिरंजना का प्रयोग पर्याप्त से अधिक होता है। सनातन धर्म के 18 पुराण इसके प्रमाण हैं।

भारतीय ज्ञान-परम्परा में इतिहास को केवल अतीत कालीन घटनाओं का रुक्ष विवरण मात्र नहीं कहा गया अपितु उसे पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन भी बताया गया है। कहा गया है - 'धर्मार्थकाममोक्षाणांमुपदेशसमन्वितम्। पूर्ववृत्त कथायुक्तमितिहास प्रचक्षते।।'[7] (प्राचीन घटनाओं की कथाओं से युक्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश देने वाले शास्त्र का नाम इतिहास है)। संक्षेपीकरण करते हुए यदि हम भारतीय ज्ञान-परम्परा में इतिहास की विशेषताओं को सूत्रबद्ध करना चाहें तो कहना होगा - (1) भारतीय ज्ञान-परम्परा में इतिहास पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन है। (2) भारतीय इतिहास में व्यक्ति को नहीं उसके द्वारा किए गए महान कार्यों को महत्व दिया गया है, वेद का मंत्र है 'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः' (व्यक्ति प्रतीक है, कृति की पूजा करो)। (3) भारतीय ज्ञान-परम्परा में इतिहास राष्ट्र की भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने वाला तत्व है। (4) इतिहास को कहानियों और महाकाव्यों के रूप में संरक्षित रखने की परम्परा ठीक उसी प्रकार है जैसे किसी दहकते अंगारे को राख में दबाकर सुरक्षित रखा जाता है। (5) भारतीय ज्ञान-परम्परा में इतिहास के वास्तविक स्रोत शिलालेख संवत-परम्परा पंडों की बहियों पुरातात्विक सामग्री और साहित्यिक ग्रन्थ आदि हैं जिनकी एजेण्डावादी व राजनीतिक विचारधारा से आक्रान्त इतिहासकारों द्वारा घोर उपेक्षा की गयी।

किसी व्यक्ति या नायक का चरित लिखना भर इतिहास नहीं अपितु उस नायक में कर्तव्य के लिए धर्म, उद्देश्य प्राप्ति के लिए अर्थ, व्यक्तिगत कामनाओं तथा ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए काम तथा बंधनों से मुक्ति के लिए मोक्ष का प्रयोग उसमें होता है। इसलिए रामायण में राम के सम्बन्ध में कहा गया है 'रामो विग्रहवान धर्मः' राम विग्रहवान धर्म हैं। उनके अनुज लक्ष्मण अर्थ हैं, शत्रुघ्न काम हैं और भरत मोक्ष हैं। तिथिपरक इतिहास जानने के लिए रामायण में दी गयीं ज्योतिषीय तिथियाँ सर्वोत्तम साधन हैं। चाणक्य ने चाणक्य सूत्र में लिखा है (1) सुखस्य मूलं धर्मः (2) धर्मस्य मूलमर्थ (3) अर्थस्य मूलं राज्यं (4) राजस्य मूलं इन्द्रिय जयः' (सुख का मूल धर्म, धर्म का मूल अर्थ, अर्थ का मूल राज्य और राज्य का मूल इन्द्रियजय है।) इसी सूत्र को भारतीय इतिहास का मूल बताया गया है।

भारतीय ज्ञान-परम्परा इतिहास में व्यक्ति नहीं उसके द्वारा किए गए महान कार्यों को महत्व देती है। इसीलिए राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, राणा कुम्भा, छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविद सिंह आदि के महान कार्यों को भारतीय समाज में सदा स्मरण रखा गया है। इतिहास राष्ट्र की भावात्मक एकता की रक्षा के लिए अनिवार्य साधन माना गया है। हमारे ऋषि मानते थे कि 'इतिहास कागज के पृष्ठों पर कब तक टिक सकता है। जब तक वह हृदय के पृष्ठों पर मुद्रित न हो? इसी प्रेरणा का ही तो फल है कि आपको वृंदावन में जगन्नाथ प्रसाद मिलेंगे, काशी में बद्रीनाथ, कलकत्ता में चण्डी प्रसाद और अमृतसर में रामेश्वर दयाल। हिमालय के नैनीताल और अल्मोड़ा में विन्ध्वेश्वरी प्रसाद ओर विन्ध्याचल तथा महेन्द्रगिरि पर हिमालय सिंह कभी भी पाए जा सकते हैं। प्रयाग में गंगा के तट पर गोदावरी बाई और गोदावरी के तट पर गंगादेवी को आविर्भूत करने वाला कौन है? यह इतिहास की अभिन्नता और आत्मीयता का अन्तः सूत्र है।'[8]

उक्त तथ्य के प्रमाणीकरण के लिए भारतीय संसद के एक तथ्यपरक मनोरंजक प्रसंग को स्मरण करना उचित होगा। भारतीय जनता पार्टी संसद में भारत की इसी भावात्मक एकता पर अपने विचार रख रही थी। स्व. सोमनाथ चटर्जी ने कहा 'भावात्मक एकता जैसी कोई चीज नहीं होती, यह भाजपा के द्वारा छोड़ा गया अस्तित्वहीन शिगूफा है'। इसके प्रत्युत्तर में स्व. सुषमा स्वराज जी ने अत्यन्त युक्तियुक्त उत्तर देकर सोमनाथ चटर्जी को निरुत्तर कर दिया- 'दादा पूर्वोत्तर के असम प्रान्त में एक प्रतिभावान एडवोकेट जन्म लेते हैं श्री निर्मल चन्द्र चटर्जी। वे हिन्दू पुनरुत्थानवादी और राष्ट्रवादी थे, वे कभी भी सौराष्ट्र में सोमनाथ मंदिर नहीं गए परन्तु उनके घर जब 25 जुलाई 1929 को पुत्र का जन्म हुआ तो उन्होंने उसका नाम सोमनाथ रखा। दादा! यही राष्ट्र की भावात्मक एकता है।'

इतिहास को यदि कहानी का महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया जाय जो जन-मन में स्थापित हो जाता है। जब दियासलाई या चकमक का प्रयोग अधिक प्रचलित नहीं था तब भारतीय घरों में गृहणियाँ भोजन के पश्चात जलते अंगारों को राख में दबा देती थी। सुबह का दबा अंगारा शाम को राख हटाकर निकालकर प्रयोग में लाया जाता था और शाम का अंगारा प्रातःकालीन भोजन बनाने में काम आता था। 'रामायण' और 'महाभारत' दोनों ही ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। इसमें इतिहास का अंगार कहानी और अतिरंजना के भीतर दबा है। उसकी राख झाड़कर इतिहास को प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय इतिहास के स्रोत और पुरातात्विक साक्ष्य अब मिलने लगे हैं या अब उन्हें खोजा जा रहा है। समुद्र के भीतर मिली द्वारका नगरी की प्राचीर मिल गयी है और लगभग 42 स्थानों पर पुरातात्विक खुदाई चल रही है। दिल्ली का पुराना पांडव किला, हरियाणा की राखी गढ़ी, उत्तर प्रदेश के तिलवाड़ा साकिन तथा इनके अतिरिक्त बिहार, महाराष्ट्र, असम, कर्नाटक और पश्चिम बंगाल आदि स्थलों पर भी ए.एस.आई. खुदाई करवा रहा है। पंडों की बहियाँ भी इतिहास का एक श्रेष्ठ स्रोत हैं। आश्चर्य है कि न्यायालय इन बहियों को साक्ष्य के रूप में स्वीकार करता है परन्तु हमारे इतिहासकार उनकी उपेक्षा करते हैं।

उक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में हम 'महाभारत' की ऐतिहासिकता पर विचार कर सकते हैं। महाभारत भारतीय संस्कृति का अद्भुत महाआख्यान है। 18 पर्वों वाले इस महाग्रन्थ में 'खिलपर्व' (हरिवंश पुराण) सहित लगभग एक लाख श्लोक हैं। इसीलिए इसको 'शतसाहस्री संहिता' भी कहा जाता है। इसे 'पंचम वेद' की संज्ञा भी प्राप्त है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि जो कुछ भारत में है वह सब इसमें उपलब्ध है और जो यहाँ नहीं है वह कहीं भी नहीं है। इसमें हजारों कूट श्लोक हैं। इसके आख्यान बड़े मनोहर हैं और तत्वज्ञान बड़ा गम्भीर है। इतिहास,

धर्म, दर्शन, नीति, भूगोल, राजनीति और पुराण तत्व का जैसा समन्वय इस ग्रन्थ में उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। 'इसमें प्राचीन काल की अनेक ऐतिहासिक कथाएँ एक ही स्थान में ग्रथित की गयी हैं। प्राचीनकाल में अश्वमेध आदि जो दीर्घ सत्र अथवा बहुत दिनों तक चलने वाले यज्ञ हुआ करते थे, उन यज्ञों में अवकाश के समय बहुत सी ऐतिहासिक गाथाएँ अथवा आख्यान कहने की प्रथा थी। ऐसे अवसरों पर कहे जाने वाले अनेक ऐतिहासिक आख्यान महाभारत में एकत्र किये गये हैं।"[9] इसकी ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। यह उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। महाभारतकार को हम अपने समय के सारे प्रश्नों और समस्याओं से जूझता और उसके समाधानपरक उत्तर तलाशता पाते हैं। इसके साथ भूगोल, इतिहास, राजनीति और धर्मानुशासन का विचित्र संयोग इसमें है। साथ ही सब वर्णन मर्यादा के अनुसार हैं। इसीलिए यह ग्रन्थ उत्कृष्ट महाकाव्य की गरिमा धारण करता है। महाकाव्य के सब गुणों से संयुक्त यह ग्रन्थ पृथ्वी के सब ग्रन्थों में अद्वितीय है। भाषा इसकी प्रौढ़ और गम्भीर है। सरलता और प्रौढ़ता का इसमें अद्वितीय मेल है।"[10] ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत अद्वितीय महत्व रखता है। महाभारत को छोड़कर एक भी भारतीय ग्रन्थ नहीं जिसमें ब्राह्मण काल से लेकर यूनानियों के आक्रमण तक की भारतीय संस्कृति का ज्ञान सम्पूर्णतः हो सके। ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों तथा सूत्रों में बिखरे हुए ज्ञान को महाभारत में एक स्थान पर मनोहर शैली में ग्रंथित कर दिया गया है। महाभारतकार इतिहास के महत्व को प्रतिपादित करते हुए यह भी कहता है -'इतिहास प्रदीपेन मोहावरणधातिना, लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत सम्प्रकाशितम्।"[11] (इतिहास एक जाज्वल्यमान दीपक है। यह मोह का अन्धकार मिटाकर लोक के अन्तःकरण रूप सम्पूर्ण अन्तरंग गृह को) भी भलीभांति प्रकाशित कर देता है)।

स्पष्ट रूप से महाभारतकार इतिहास के महत्व से भलीभाँति परिचित है, ऐसा समझा जा सकता है। अब महाभारत की अपनी ऐतिहासिकता पर विचार करें। आज ज्ञान की समग्रता पर विश्वास किया जाने लगा है। इतिहास, धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, नृतत्व विज्ञान, मनोविज्ञान और विज्ञान निकट आ रहे हैं। हर क्षेत्र में ज्ञान के नये आयाम तलाशे जा रहे हैं। इतिहास के सम्बन्ध में कहा जाने लगा है कि 'इतिहास तथ्यों का संकलन नहीं अपितु तथ्यों की व्याख्या है।' जी बैरेकली ने इतिहास को लेकर कहा है, 'हम जो इतिहास पढ़ते हैं, हालांकि वह तथ्यों पर आधारित है, ठीक-ठीक कहा जाये तो एकदम यथातथ्य नहीं है, बल्कि स्वीकृत फैसलों का एक सिलसिला है।"[12] इस बदले हुए उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टिकोण में महाभारत की ऐतिहासिकता असंदिग्ध हो जाती है।

महाभारत के तीन रचनाकार हैं, तीन ही उसके नाम हैं और तीन स्थानों से उसका प्रारम्भ माना जाता है। तीन रचनाकार हैं- कृष्ण द्वैपायन व्यास, उनके शिष्य वैशम्पायन तथा अंततः सौति। तीन नाम हैं- जय, भारत एवं महाभारत तथा इसके मनु, आस्तिक एवं उपरिचर के प्रसंग ये तीन उसके प्रारम्भिक स्थल हैं। इन तीनों की साक्षी स्वयं महाभारत देता है। 'जय' नाम का उद्घोष तो मंगलाचरण में ही हो जाता है। मंगलाचरण है - 'नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयुमुदीरयेत्।।"[13] (नारायण को अर्थात् श्रीकृष्ण को तथा नरों में श्रेष्ठ जो नर अर्थात अर्जुन उसको नमस्कार करके और सरस्वती देवी को भी नमस्कार करके अनन्तर 'जय' नामक ग्रन्थ को पढ़ना चाहिए)। बड़ी कुशलता से व्यास ने इस मंगलाचरण में काव्य-नायक नर-नारायण (कृष्णार्जुन) काव्य-विषय उनकी 'जय' तथा वाक्देवी को नमन तीनों को एक साथ गूंथकर ग्रन्थ का नाम जय भी बता दिया है। मान्यता यह है कि महाभारत के कथानक में अनुस्यूत कूट श्लोक व्यास

विरचित हैं जिनकी संख्या लगभग 8800 है। बाद में वैशम्पायन ने इसके कलेवर में वृद्धि की तब इसका नाम 'भारत' हो गया फिर उग्रश्रवा के पुत्र सौति ने इसमें उस काल तक प्रचलित सभी पुरावृत्त और गाथायें जोड़ दी तब यह वृहद आकार और वर्तमान स्वरूप का 'महाभारत' ग्रन्थ बन गया।

किसी ग्रन्थ की ऐतिहासिकता पर विचार करते समय चार बिन्दु विचारणीय होते हैं- (1) काल, (2) पात्र, (3) स्थान और (4) घटना।

1. महाभारत के काल को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने व्यास को 'काल परिगणन' से मानव-जगत का प्रथम इतिहासकार तथा प्रथम सम्पादक माना है।[14] वे महाभारत का समय 15वीं शताब्दी ई.पू. मानते हैं।

2. महाभारत के भीष्म पर्व, द्रोण पर्व, उद्योग पर्व, शल्य पर्व तथा अनुशासन पर्व के कुछ श्लोकों के आधार पर अध्यापक प्रमोद चन्द सेनगुप्त ने महाभारत युद्ध का काल ई. पू. 2449 वर्ष निर्धारित किया है।

3. चालुक्य वंशीय राजा पुलकेशिन द्वितीय का एक शिलालेख दक्षिण के कलान्दी अर्थात बीजापुर के ऐहोल स्थान के मेगुटी नामक एक जैन मन्दिर पर प्राप्त हुआ था। उसके अक्षर दक्षिणात्य है। यह शिलालेख है- 'त्रिशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु श (ग) तेष्वन्देषु पत्र्वसु पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च। समासु समतीतासु शकानामपि मृजु जाम्।"[15]इन श्लोकों का अर्थ किया जाता है कि भारत युद्ध से 3735 वर्ष बीत जाने पर जब कलि में शकों के 556 वर्ष व्यतीत हुए थे। श्री भगवद्दत्त ने इस सम्बन्ध में लिखा है 'हमें इस अर्थ में थोड़ा सन्देह है। फिर भी इससे इतना ज्ञात होता है कि शक संवत् 556 अथवा सन 634 में भारत के दक्षिण के कई विद्वान भारत युद्ध को ईसा से 3100 वर्ष पहले मानते थे।"[16]

4. सन् 1912 में निधानपुर में मिले ताम्रपत्र में नरकासुर का पुत्र भगदत्त (जिसने महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से युद्ध किया था) तथा भगदत्त का पुत्र बज्रदत्त को बताया गया है। इनके 3000 वर्ष बाद का समय राजा पुण्यवर्मा का निर्धारित किया गया है। इस आधार पर पण्डित भगवदत्त जी ने महाभारत युद्ध का समय 2700 ई.पू. अनुमानित किया है।

चिन्तामणि विनायक वैद्य ने कुछ अन्य भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों द्वारा महाभारत युद्ध का समय निर्धारित करने वाले मतों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार - (1) स्व. मोडक ने ज्योतिष व नक्षत्रीय गणना के आधार पर यह समय 5000 ई. पू., (2) कुछ ने 3101 ई.पू., (3) कुछ आर्यसमाजी विद्वान वराह मिहिर तथा कश्मीर के पण्डित कल्हण की 'राजतरंगिणी' के अनुसार शक संवत् से 2526 वर्ष पहले, (4) रमेशचन्द्र मजूमदार एवं कुछ पाश्चात्य विद्वान यह समय 1400 ई.पू. तथा (5) मद्रासी विद्वान विलण्डी अय्यर महाभारत युद्ध का समय कुछ अन्य प्रमाणों के आधार पर 14 अक्टूबर 1194 ई.पू. निर्धारित करते हैं।[17] परन्तु आश्चर्यजनक यह है कि विद्वानों ने इस काल निर्धारण में दो पुष्ट और अकाट्य प्रमाणों की उपेक्षा की है, वे हैं (1) युधिष्ठिर संवत् तथा (2) श्रीकृष्ण संवत्।

काल गणना में कल्प, मन्वन्तर और युगादि के बाद जो सर्वाधिक वैज्ञानिक इकाई है वह संवत् है। भारत में अनेक संवत् प्रचलित हैं। अनेक महान ऋषियों और राजाओं के नाम से भी संवत् प्रचलित हैं इनमें प्रमुख संवत् 18 हैं - (1) कल्पाब्द- 1, 97, 29, 49, 125। (2) सृष्टि संवत- 1, 95, 58, 85, 125। (3) वामन संवत- 1, 96, 08, 84, 125। (4) श्री राम संवत- 1, 25, 69, 125। (5) श्री कृष्ण संवत- 5250। (6) कलि संवत- 5125। (7) युधिष्ठिर संवत- 5125 (कुछ विद्वान इसे ई.पू. मानते हैं अतः उनके अनुसार 3156 बनता है।)। (8) सप्तर्षि संवत- 5600। (9) बौद्ध संवत- 2599। (10) महावीर संवत- 2551। (11) शंकराचार्य

संवत- 2304। (12) विक्रम संवत- 2081। (13) शालिवाहन संवत- 1946। (14) कल्चुरी संवत- 1776। (15) बल्लभी संवत- 2004। (16) फसली संवत 1635। (17) बंगला संवत 1431। (18) हर्ष संवत- 1417। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा 30 मार्च 2025 से नवसंवत प्रारम्भ हो जाएगा तब से ये संवत एक वर्ष आगे बढ़ जायेंगे जैसे श्रीकृष्ण संवत 30 मार्च 2025 से 5251और युधिष्ठिर संवत् 5126 तथा कलि संवत 5126 प्रारम्भ हो जाएगा। इसी तरह चैत्र शुक्ल प्रतिपदा वि. सं. 2083 अर्थात 19 मार्च 2026 से फिर एक वर्ष जुड़ जायेगा। 'नवीन संवत् चलाने की शास्त्रीय विधि यह है कि जिस नरेश को अपना संवत् चलाना हो उसे संवत् चलाने के दिन से पूर्व कम से कम अपने पूरे राज्य में जितने भी लोग किसी के ऋणी हों उनका ऋण अपनी ओर से चुका देना चाहिए।"[18]

यहाँ एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण जब समकालीन थे तो इन दोनों के संवतों में 135 वर्ष का अन्तर क्यों है? इसका जो कारण हमारी समझ में आता है, यह है कि श्रीकृष्ण ने अपने नाम से संवत् द्वारका में अपना गणराज्य (अन्धकवृष्णिगण) भली प्रकार से स्थापित कर लेने के बाद स्वयं चलाया था। वैद्य जी के अनुसार उन्होंने 18 वर्ष की अवस्था में कंस का बध कर दिया था। इसके उपरान्त उन्हें लगातार प्रतिवर्ष जरासंध के 17 आक्रमणों को झेलना पड़ा अर्थात लगभग 35-36 वर्ष की अवस्था में वे द्वारका पहुंचे। यहाँ द्वारका बसाने और गणराज्य को व्यवस्थित करने में उन जैसे संगठन कुशल व रण-कुशल व्यक्ति को 78 वर्ष लगे होंगे। 49-50 की अवस्था में उनकी ख्याति सम्पूर्ण भारत में फैल चुकी थी तभी उन्होंने अपना संवत् प्रचलित किया। इसके पश्चात 70-75 वर्ष और जिये और उनके जीवन में महत्वपूर्ण घटनायें घटित हुई। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद, यादवों का विनाश उन्हें अपनी आँखों से देखना पड़ा। युधिष्ठिर संवत् अर्जुन के पौत्र जनमेजय ने चलाया था। महाभारत युद्ध के उपरान्त पाण्डव युद्ध तो जीत गये परन्तु उसमें भयंकर महाविनाश हुआ। युद्ध के उपरान्त उन्होंने राज्याभिषेक तथा एक अश्वमेध यज्ञ भी किया परन्तु राज्य में अव्यवस्था व अराजकता फैल गयी। इसका कुछ प्रमाण महाभारत से ही मिल जाता है। श्रीकृष्ण निधन के बाद यादवनारियों को अपनी अभिरक्षा में साथ ले जाते अर्जुन के सामने ही पंचनद में लट्ठधारी ग्वालों ने उन्हें लूट लिया था। यह पाण्डवों के राज्य की अराजकता और उनके घटते नियन्त्रण का प्रमाण है। फिर परीक्षित को राज्य सौंपकर वे हिमालय चले गये। परीक्षित के राज्य में नागों ने विद्रोह किया (नागों और आर्यों के पारस्परिक विरोध के प्रमाण महाभारत में बिखरे पड़े हैं) और परीक्षित को मार दिया। फिर जनमेजय राज्याभिषिक्त हुआ। वह अत्यन्त प्रतापी सम्राट था। उसने नागों पर सैन्य अभियान किया उनकी बस्तियों को उजाड़ा तथा नाग-युवाओं का जीवित अग्निदाह किया। नागों का पूरी तरह दमन करके फिर उसने बड़ा यज्ञ किया और उसी यज्ञ में युधिष्ठिर संवत चलाया। इस सारे घटनाक्रम में 135 वर्ष का समय लगना स्वाभाविक है। इसीलिए श्रीकृष्ण संवत और युधिष्ठिर सवत् में 135 वर्ष का अन्तर दिखाई पड़ता है। हमारा मानना है कि इन दोनों संवतों से बड़ा महाभारत की ऐतिहासिकता का कोई और प्रमाण नहीं हो सकता।

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर के नाम से प्रचलित संवत् ही उनको ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध करने वाले प्रमाण हैं परन्तु ई पू. चौथी शताब्दी में चन्द्रगुप्त मौर्य की सभा के यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने भी मथुरा, द्वारका, यमुना और श्रीकृष्ण पूजा का उल्लेख किया है जो उस समय तक श्रीकृष्ण के भगवान रूप में स्थापित हो जाने का प्रमाण है। डा. कनिंघम को वृष्णिराज्य (कृष्ण का वंश) की एक रजत मुद्रा मिली थी जो ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में सुरक्षित है। गुरुकुल झज्जर में भी कुछ मुद्राएँ सुरक्षित हैं। इन मुद्राओं पर 'वृष्णि राजन्यगणस्य अंकित है। इन पर हस्ति-सिंह,

सुदर्शन चक्र, गदा, मूसल तथा शंख अंकित हैं।[19]

जहाँ तक स्थानों का प्रश्न है। पाण्डवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) आज भी स्थित है। इसका ऐतिहासिक अस्तित्व तमाम भारतीय ग्रन्थों में प्रमाणित है। पाण्डवों के किले को लेकर पुरातत्वविदों के शोध की आवश्यकता है। महाभारत युद्ध की घटना के सम्बन्ध में सभी भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषी उसको ऐतिहासिक घटना मानते हैं। यहाँ भगवतशरण उपाध्याय का मत उद्धृत करना हमें समीचीन लगात है, 'महाभारत युद्ध की घटना के ऐतिह्य में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। परीक्षित, जनमेजय और अन्य पाण्डवों के नाम अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं। इसलिए उनकी ऐतिहासिकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। साथ ही उसका समय भी प्राचीन होना चाहिए क्योंकि राजा परीक्षित का नामोल्लेख अथर्ववेद तक में हुआ है। स्वयं राजा शान्तनु का नाम ऋग्वेद में मिलता है।'[20]

इस लघु आलेख में विभिन्न विद्वानों के मतों की विस्तृत चर्चा सम्भव नहीं है। अतः हम निर्विवाद रूप से यह मानते हैं कि महाभारत एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। अभी हाल ही में मेरठ में खुदाई में मिले ताम्रमंडित रथों ने महाभारत की ऐतिहासिकता के नए द्वार खोल दिए हैं, उसमें व्याप्त व अनुस्यूत कल्पनाओं व अतिरंजनाओं का आवरण हटाकर उसके भीतर के इतिहास तत्व को समझने-समझाने की आज महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. अथर्ववेद काण्ड 15 अध्याय 01 सूक्त-6 मंत्र 110-112। **2.** छान्दोग्योपनिषद- 7/2। **3.** अमर कोष - अमर सिंह, कांड 01- वर्ग 6 टीकाकार देवदत्त तिवारी सन 1883 मेडीकल प्रेस बनारस। **4.** संस्कृत हिन्दी कोश- वामन शिवराम आप्टे - पृ. 0174 तृतीय संस्करण 1973 मोतीलाल बनारसी दास- दिल्ली। **5.** नालन्दा विशाल शब्द सागर -सम्पा नवल जी पृ. 317- न्यू इम्पीरियल बुक डिपो, नई सड़क दिल्ली- संवत 2007। **6.** वही पृ. 694। **7.** विष्णुधर्मोत्तर 3/15/01। **8.** भारत के प्राणाचार्य कविराज रत्नाकर शास्त्री पृ. 27- आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली-6-1988। **9.** महाभारत मीमांसा- चिन्तामणि विनायक वैद्य-पृ.-01, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़ 1990। **10.** धर्मोरक्षित - आचार्य चतुरसेन शास्त्री पृ. 349 प्रभात प्रकाशन चावड़ी बाजार दिल्ली 1981। **11.** महाभारत आदि पर्व 1/87। 12. हिस्ट्री इन चेंजिंग वर्ल्ड (1955) जी बैरेकली पृ. 14। **13.** महाभारत आदि पर्व 1/1। **14.** प्राचीन भारत का इतिहास, डा. भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 12. ग्रन्थमाला कार्यालय-पटना- 1994। **15.** ऐपिग्राफिया इण्डिका - भाग-3 पृ. 07। **16.** भारतवर्ष का इतिहास- श्री भगवद्दत्त - पंचनद प्रेस लिमि. मॉडल टाउन (पंजाब), संवत् 2003 वि। **17.** महाभारत मीमांसा, पृ. 89। **18.** कल्याण - हिन्दू संस्कृति अंक-आलेख हिन्दू संवत्, वर्ष मास और वार-लेखक ज्योतिर्विद पं. देवकीनन्दन खंडेलवाल पृ. 756। **19.** (अ) भारत सावित्री भाग-3 वासुदेव शरण अग्रवाल, (ब) हिन्दू राज्यमंत्र काशी प्रसाद जायसवाल- अनुवाद -रामचन्द्र वर्मा, पृ. 43, नागरी प्रचारिणी सभा काशी संवत् 2034 वि। **20.** प्राचीन भारत का इतिहास- डा. भगवतशरण उपाध्याय, पृ. 71-72।

एमेरिट्स फेलो (यू.जी.सी.)
86, तिलक नगर, बाईपास रोड,
फीरोजाबाद-283203
मो. 9412316779

●

मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूंगा क्योंकि पुस्तकों में वह शक्ति है कि वे जहां भी होंगी, स्वर्ग बन जायेगा। **– गंगाधर तिलक**

पुराने कपड़े पहनो तथा नई पुस्तकें खरीदो। **– थोरो**

महामति चाणक्य एवं राष्ट्रीयता

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र (पद्मश्री)

द्वापर के अन्त में, महाभारत युद्ध की अवधि में जरासन्ध मगध का प्रतापी शासक था जिसकी राजधानी राजगृह थी। वासुदेव कृष्ण का मामा कंस उसका जामाता था। वासुदेव कृष्ण ने उसे पाण्डवों का पथकण्टक मान, युद्ध से पूर्व ही महाबली भीम के हाथों मरवा दिया और उसके पुत्र सहदेव को मगध का शासक नियुक्त किया जिसने महाभारत युद्ध में पाण्डवों के पक्ष में भाग लिया। जरासंध के वंश का अन्तिम राजा रिपुंजय अत्यन्त निर्वीर्य तथा अयोग्य था फलतः महामात्य पुलिक ने उसका वध कर अपने पुत्र को राज्यासीन कर दिया। परन्तु कुछ ही समय बाद भट्टिय नामक सामन्त ने उसे भी रण में पराजित कर, अपने पुत्र बिम्बसार को राज्यारूढ़ कर दिया।

बिम्बसार (छठी शताब्दी ई. पूर्व) बौद्धयुगीन ऐतिहय्खण्ड का सर्वाधिक कुशल, शक्तिमान् तथा प्रतापी शासक था। अपनी धार्मिक आस्था के कारण वह अपने समवयस्क बुद्ध एवं महावीर दोनों को प्रिय था। अपने वैवाहिक सम्बन्धों के कारण उसका साम्राज्य काशी-कोशल-विदेह से लेकर अवन्ती तथा पश्चिम में गान्धार-काम्बोज तक व्याप्त था। उसका पुत्र अजातशत्रु (ई.पू. 490) भी पिता-सदृश ही प्रतापी था। अजातशत्रु का पुत्र उदायी (उदय-भद्र अपना उदयिन्) था। उसने अवन्ती पर विजय प्राप्त की तथा पाटलिपुत्र नगर की स्थापना कर उसे मगध की राजधानी बनाया। शिशुनाग नामक नरेश ने इस वंश को उच्छिन्न कर दिया। शिशुनाग तथा (पुत्र) कालाशोक के अनन्तर ई.पू. 363 से 324 तक नन्दवंश के राजाओं ने राज्य किया। इस वंश का संस्थापक महा-पद्मानन्द अत्यन्त शूरवीर तथा महत्त्वाकांक्षी था परन्तु अन्तिम नरेश धनानन्द उतना ही दुर्व्यसनी, अत्याचारी तथा क्षुद्र ! नन्दों की वंश-प्रशस्ति भी शून्य थी, कुलीन न होने के कारण। महामति चाणक्य नामक एक ब्राह्मण आचार्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य को नेतृत्व प्रदान कर नन्दवंश का अन्त कर दिया। यही मौर्यवंश सम्पूर्ण भारत के साथ ही, पश्चिमोत्तर बाह्लीक (बल्ख) तक व्याप्त हो उठा, चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र अशोक महान् के शासनकाल में।

महामति चाणक्य को ही (आचार्य) विष्णुगुप्त तथा कौटिल्य भी कहा जाता है। इन्हीं को द्रामिल, ग्रल, वात्स्यायन, मल्लनाग, वराणक तथा पाक्षिलस्वामी भी कहा गया है, अभिधानचिन्तामणि, वैजयन्तीकोश प्रथा नवमल्लिका में। चाणक्य उनका गोत्रनाम है -

चणकपुत्र होने के कारण। कौटिल्य उनका गुणाधारित नाम था कुटिल होने के कारण, क्योंकि वह 'शठे शाठ्यं समाचरेत' के पक्षधर तथा दुर्मर्षण प्रकृति के थे। उन्हें अपनी प्रत्युत्पन्नमति पर बड़ा भरोसा भी था, जैसा कि नाट्यकार विशाखदत्त ने कहा है- 'बुद्धिस्तु मा गान्मय'- मुद्रा राक्षसम्। विष्णुगुप्त उनका कौटुम्बिक नाम था।

महामति चाणक्य एक इतिहास निर्माता प्राचार्य थे जो मगध साम्राज्य के स्वप्नदर्शी, निर्माता तथा संरक्षक थे (इस कालजयी चरित्र को अपने महाकाव्य 'आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य' का नायक चुन कर तथा उनका साक्ष्य सम्मत विश्वसनीय वर्णन कर मेरे मित्र कवि डॉ. रामबोध पाण्डेय ने अपनी अमृतगर्भा लेखनी को, सारस्वतयागान्त अवभृथ-स्नान कराया है)। भारत की प्राचीन राजवंशीय परम्परा में स्वायम्भुव मनु-वंश, वैव-स्वत (सूर्य) वंश तथा चन्द्रवंश प्रधान रहे हैं। इनसे भी प्राचीन रहे हैं देव तथा असुरवंश। परन्तु इन वंशों में शास्त्र का उतना महत्त्व नहीं रहा जितना कि पुरोहित अथवा पुरोधा का (जो महामात्य भी होता था)। देवराज इन्द्र तथा दानवराज बलि (अथवा वृषपर्वादि) के गुरु थे भगवान् वृहस्पति (आङ्गिरस) तथा भार्गव शुक्राचार्य। इसी प्रकार स्वायम्भुव मनुवंश के योगक्षेमचिन्तक भगवान् सनत्कुमार, सूर्यवंश के पुरोधा ब्रह्मर्षि वशिष्ठ तथा चन्द्रवंश के महर्षि च्यवन अथवा गर्ग रहे।

यही दैव तथा पौराणिक परम्परा लोक में भी प्रचलित रही। अनेक भास्वर राजवंश अपने महामात्यों के ही कारण चिरस्मरणीय बन सके। इस परम्परा अथवा मणिमाल्य के ही सुमेरु हैं-- आचार्य विष्णुगुप्त! विष्णुगुप्त का ही अनुवर्तन करते हैं-- योगन्धरायण (वत्स राजवंश), हरिषेण (समुद्रगुप्त), आचार्य राजशेखर (गुर्जर-प्रतिहार वंश), देवादित्य (राष्ट्र-कूट वंश), वत्सभट्टि (पल्लव वंश), आचार्य सायण (संगम वंश), वत्सराज (चन्देल वंश), तेजपाल-वस्तुपाल (चौहान वंश), वटुदास-श्रीधरदास (सेन वंश), धनपाल (परमार वंश) आदि।

ये महामात्य शस्त्र एवं शास्त्र दोनों के धनी होते थे। सम्राट पृथ्वीराज चौहन (तृतीय) के महामात्य चन्द्रवरदायी इस परम्परा के शिखर मणि हैं। आचार्य चाणक्य तो अपने अनेक दुर्लभ गुणों के कारण इन सब में शीर्षस्थ हैं। वह एक उद्‌भट शास्त्रकार हैं। उन्होंने 15 अधिकरणों, 150 अध्यायों, 6000 श्लोकों तथा अनेक गद्यात्मक वृत्तियों से संवलित, भारत राष्ट्र का एकमात्र सांगोपांग उपलब्ध अर्थशास्त्र (राजनीति शास्त्र) लिखा जो सम्पूर्ण विश्व साहित्य में बेजोड़ है। यद्यपि ई. पू. 1450 में सुमेर सम्राट दूंगी तथा ई. पू. 2123 में बेबिलोन सम्राट हम्मूरबी ने भी अर्थशास्त्र-प्रतिच्छाय ग्रन्थ लिखवाये। जावा के सम्राट् राजसनगर (हयम वुरुक) ने भी सन् 1292 ई. में महाकवि प्रपञ्च द्वारा नागरकृतागम नामक राजनयिक ग्रन्थ लिखवाया। परन्तु कौटिलीय अर्थशास्त्र जैसी सर्वांगिता, विवेच्यविषय-प्रचुरता तथा व्याप्ति किसी में भी नहीं। कौटिलीय अर्थशास्त्र मौर्ययुगीन शासन-व्यवस्था का भास्वर दर्पण है जिसके अनेक प्रमेय आज भी राजनीति, प्रतिरक्षाविज्ञान तथा वैदेशिक नीति में संगत है। इसका विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा। अर्थशास्त्र राष्ट्र, शत्रु, मित्र, तटस्थ, युद्ध, सन्धि, व्यपाश्रय, कण्टकशोधन, विप्लव, शान्ति तथा राष्ट्रीयता आदि को स्पष्टतः परिभाषित करता है, जिनसे राष्ट्र राष्ट्र होता है।

महामति चाणक्य एक उच्चकोटिक नीतिवेत्ता कवि भी था। उसकी नीतियाँ शुक्र, विदुर, काणिक तथा कामन्दक की तुलना में कहीं अधिक व्यावहारिक हैं। उसने समाज को खुली आँखों देखा था । फलतः उसने जीवन के उच्चावच सन्दर्भों को नैतिक आधार दिया था। चाणक्य-नीति की अनेक वचनिकायें (संस्करण) मिलती हैं जिनका संकलन पाश्चात्त्य विद्वान लुडविग् स्टर्नबाख ने 1963 ई. में किया तथा विश्वेश्वरानन्द शोध-संस्थान, होशियारपुर

से प्रकाशित कराया। ये वचनिकायें इस प्रकार हैं--

1. वृद्धचाणक्यम् 8 अध्याय, 336 श्लोक।
2. वृद्धचाणक्यम् 17 अध्याय, 336 श्लोक।
3. चाणक्यनीतिशास्त्रम् 108 पद्य।
4. चाणक्यसारसंग्रहः 300 अनुष्टुप पद्य।
5. लघुचाणक्यम् 8 अध्याय, प्रति अध्याय 10 पद्य।
6. चाणक्यराजनीतिशास्त्रम् 8 अध्याय 397 श्लोक।

मैंने कालिदास के पूर्ववर्ती महाकवि भास को मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का आश्रित माना है। भास चाणक्य का उल्लेख नहीं करते तथा रावण के मुँह से वृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख कराते हैं। संभवतः तब तक चाणक्य का अर्थशास्त्र प्रसिद्ध नहीं हो पाया था। मैं अर्थशास्त्र का विवेचन यहाँ राष्ट्रीयता की दृष्टि से करना चाहूँगा जो आज भी युगापेक्षित है।

आचार्य कौटिल्य एवं राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। वेदों में उपलब्ध साम्मनस्यसूक्त, पृथ्वीसूक्त, वाक्सूक्त तथा विशेष रूप से यजुर्वेद के 22वें अध्याय की 22वीं कण्डिका में अनुस्यूत भाव विश्व की प्राचीनतम राष्ट्रीयता-अवधारणा का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इन वैदिक मन्त्रों से सुस्पष्ट हो जाता है कि भारतीयों की दृष्टि में तब भी पृथ्वी कोई जड़वस्तु नहीं थी। वह उनके लिये ममता एवं वत्सलता से ओतप्रोत जननी के समान थी। उसी ममता के कारण प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता था कि 'पृथ्वी माँ है और मैं उसका पुत्र हूँ।'

कालान्तर में राष्ट्रीयता की अवधारणा में अनेक युगापेक्षी परिवर्तन भी हुए। राजसत्ता के विवर्त के साथ ही साथ राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के दायरे भी बदले। अमरकोषकार राष्ट्र तथा राष्ट्रिय शब्दों का प्रयोग करता है। आपाततः ये सभी शब्द एक ही धातु एवं प्रत्यय से निष्पन्न प्रतीत होते हैं। राजते इति राष्ट्रम् (राज् धातु + ष्ट्रन्--राष्ट्रन्--राष्ट्रम्) अर्थात् जो अभ्युदयशील हो वही राष्ट्र है। राष्ट्र शब्द से ही राष्ट्री, राष्ट्रिका तथा राष्ट्रिय शब्द विकसित हुए होंगे। परन्तु आश्चर्य है कि राष्ट्रिका तथा राष्ट्रिय शब्दों का अर्थ राष्ट्र शब्द के वाच्यार्थ से सर्वथा भिन्न है। राष्ट्रिका का अर्थ है- भटकैया और राष्ट्रिय का अर्थ है- राजश्याल।

प्रणोदनी कुली क्षुद्रा दुःस्पर्शा राष्ट्रिकेत्यपि - (2.4.94)।

राजश्यात्लस्तु राष्ट्रियः। - (अमर. 1.7.14)।

राष्ट्रेऽधिकृतः राष्ट्रावारपार इति घः। - (अमर. 4.2.93)।

रचना-प्रक्रिया की समानता के बावजूद भी इन शब्दों का विसंगत अर्थभेद एक लम्बी समाजशास्त्रीय शोध की अपेक्षा करता है। वस्तुतः राष्ट्र अथवा राज्य एक ऐसा बहुआयामी विषय है कि धर्मशास्त्र, स्मृति, महाकाव्य, नाटक, कथा, आख्यायिका, चम्पू एवं राजशास्त्र-- सबने स्वयं को उससे जोड़ रखा है। यदि स्मृतियाँ घोषित करती हैं कि **राजा कालस्य कारणम्** तो काव्य घोषित करते हैं- **राजा प्रकृतिरञ्जनात्।** समस्त कलाओं तथा विद्याओं का आश्रय एकमात्र राजा ही है जैसे समुद्र समस्त रत्नों का एकमात्र अधिष्ठान। राजा ही स्वामी होता है राज्य का, और राज्य का ही एक विशिष्ट अंग होता है राष्ट्र।

राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की सर्वाधिक प्रामाणिक व्याख्या हम कौटिलीय अर्थशास्त्र में पाते हैं जो कि निस्सन्देह भारतीय इतिहास में मौर्ययुगीन राजनय का प्रत्यायक दस्तावेज़ है। अन्य विद्या-निकाय तो राष्ट्र आदि की आनुषङ्गिक व्याख्या करते हैं परन्तु आचार्य कौटिल्य का अर्थशास्त्र तो आद्यन्त राज्यव्यवस्था के ही विविध पक्षों की व्याख्या करता है। उसकी सबसे बड़ी व्यवस्थापित विशेषता यह है कि वह प्रत्यक्षीकृत व्यावहारिक सत्य का विवेचन करता है। अमरकोषकार ने सम्भवतः सप्ताङ्ग अथवा अष्टाङ्ग राज्य की अवधारणा कौटिल्य से ही ली होगी। कौटिल्य की दृष्टि में स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद (राष्ट्र), दुर्ग, कोश, दण्ड तथा मित्र (इन सातों

को समवेत रूप से) प्रकृति कहा जाता है - **स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः।** (अर्थशास्त्र 6.1.1)। स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोश तथा दुर्ग- ये पाँच तो अर्थशास्त्र में तथा अमरकोष में समान रूप से उल्लिखित हैं। कौटिल्य के 'जनपद' तथा 'दण्ड' को अमरकोषकार राष्ट्र एवं बल (सेना) की संज्ञा देते हैं। पौरों की श्रेणी (जनता) को भी आठवीं प्रकृति (विकल्प) मानकर अमरकोषकार ने स्वचिन्तन का विकास प्रदर्शित किया है।

पौर-श्रेणी को भी प्रकृति का अंग मानना स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। इससे एक ओर जहाँ साम्राज्य में व्यक्ति-स्वातंत्र्य के समर्थन का संकेत मिलता है वहीं राष्ट्र के योगक्षेम की स्थापना में जनता की सीधे हिस्सेदारी भी सिद्ध होती है। फ्रांस (1789 ई.), रूस (1917 ई.) तथा भारत (1942 ई.) की क्रान्तियाँ इस तथ्य की साक्षी हैं कि पौर-श्रेणियाँ (जनताजनार्दन) भी सत्ता परिवर्तित करने की क्षमता रखती हैं। जनता केवल रावण अथवा कंस का अत्याचार ही सहना नहीं जानती, अवसर पड़ने पर वह अन्यायी वेन तथा रामगुप्त का विनाश भी कर सकती है, एक नये सौराज्य की संस्थापना भी कर सकती है। इन्हीं सातों प्रकृतियों को कौटिल्य 'राजसम्पत्' की संज्ञा देता है। जब ये प्रकृतियाँ अपने-अपने कार्यों में निष्ठापूर्वक लगी रहती हैं तभी राष्ट्राभ्युदय सम्भव होता है। इनमें यदि एक भी उत्पथ है तो राष्ट्र का विनाश सुनिश्चित है। रावहम्मीर (14वीं शती ई.) की पराजय का मुख्य कारण था सेनापति रणमल्ल एवं कोष्ठागारिक जाहड का अलाउद्दीन से मिल जाना। पुरु (ई.पू. चौथी शती) की पराजय का कारण था मित्र आम्भी का विश्वासघात। राणाप्रताप के पराभव का भी बहुत कुछ कारण था कोश एवं दुर्ग का अभाव।

जनपद अथवा राष्ट्र की स्थापना का जो चित्र आचार्य कौटिल्य प्रस्तुत करते हैं वह युगविशेष का आदर्श होते हुए भी, आज अप्राकरणिक नहीं प्रतीत होता है। कौटिल्य जनपद अथवा राष्ट्र के जिन गुणों, अवगुणों की चर्चा करते हैं वे कितने सार्थक हैं इसका सहज अनुमान, आज के भारत की राजनैतिक-स्थिति का आकलन करके, लगाया जा सकता है। यदि आज का भारत (जनपद, राष्ट्र) कौटिल्य की ही तुला पर स्वारक्ष, स्वाजीव, गुप्तगोचर, पशुमान्, अदेवमातृक (किसी सीमा तक) वारिस्थल-पथाभ्युपेत, सारचित्रबहुपण्य तथा दण्डकरसह आदि सिद्ध होता है तो यह भी निस्सन्देह सत्य है कि वह **शक्यसामन्त** अथवा **शत्रुद्वेषी** नहीं। शक्यसामन्त का अर्थ है पास-पड़ोस में दुर्बलराजाओं से युक्त होना। आज भारत की दुर्दशा का एकमात्र कारण यही है कि उसके पड़ोसी (चीन, पाकिस्तान, नेपाल, बाँगलादेश तथा श्रीलंका) या तो सचमुच दुर्बल नहीं हैं या फिर आयातित दुश्शक्तियों के कारण सबल बने बैठे हैं। 'शत्रुद्वेषी' का अर्थ कौटिल्य की दृष्टि में यह है कि जनपद अथवा राष्ट्र में---राष्ट्र के शत्रुओं से द्वेष करने वाले लोग अधिसंख्य हों। भारत का दुर्भाग्य यह भी है कि यहाँ भारत विरोधी अभियान के प्रमुख सूत्रधार---चीन एवं पाकिस्तान के प्रशंसकों की कमी नहीं। पाकिस्तानी तथा चीनी, भारतीय मुसलमानों तथा कम्यूनिस्टों के मौसेरे भाई हैं।

राष्ट्र अथवा जनपद राज्य के सात अंगों में से एक विशेष अंग मात्र है, परन्तु कोश, दुर्ग, सेना, राजा, अमात्य तथा शत्रुमित्र सबका अधिष्ठान होने के कारण उसका सर्वाधिक महत्त्व सिद्ध होता है। यही कारण है कि सामान्य जनता की दृष्टि में 'राष्ट्र' अथवा जनपद ही राज्य होता है। वस्तुतः राष्ट्र और राज्य में विशेष--सामान्य अथवा अंग--अंगी का सम्बन्ध उतना सार्थक नहीं प्रतीत होता जितना कि दोनों का पर्यायत्व। यदि जनपद या राष्ट्र ही नहीं तो राजा किसका? और यदि राजा नहीं तो सेना, दुर्ग, कोष तथा शत्रु-मित्र किसके? छिन्ने मूले नैव पत्रं न शाखा! राष्ट्र के बिना राज्य की कोई परिकल्पना ही नहीं सिद्ध हो पाती है।

अब प्रश्न यह है कि राष्ट्रीयता क्या है? प्राचीन

संस्कृत-वाङ्मय में तो इस शब्द का प्रयोग मिलता नहीं। यदि कहीं हो भी (मृच्छ. का पात्र राष्ट्रिय) तो उसका अर्थ भिन्न होगा, जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है। राष्ट्रियता का अर्थ होगा राजश्याल होने का भाव। परन्तु वर्तमान सन्दर्भ एवं अर्थ में प्रयुक्त 'राष्ट्रीयता' (राष्ट्रपक्षधर होने का भाव अर्थात् राष्ट्रप्रेमित्व) का उस 'राष्ट्रियता' से कोई अर्थसाम्य नहीं। तब फिर भारत के महान् अर्थशास्त्री आचार्य कौटिल्य की दृष्टि में राष्ट्रीयता की आर्थी भावना क्या हो सकती है? मेरी दृष्टि में, कौटिल्य जिसे 'राजसम्पत्' की संज्ञा देते हैं वही उस युग की राष्ट्रीयता रही होगी। आज भी यथाकथञ्चित् राजसम्पत् (सप्त प्रकृतियों की नैष्ठिक कर्तव्यशीलता) ही वास्तविक 'राष्ट्रीयता' मानी जा सकती है। राष्ट्रवादी अथवा राष्ट्रप्रेमी होने का भाव ही 'राष्ट्रीयता' है, और यह भाव निष्ठा के बिना कहाँ सम्भव है? यह निष्ठा दुहरी होनी चाहिये एक तो अमात्यादि प्रकृतियों की राजा के प्रति और दूसरी ओर प्रकृतियों की एक दूसरे के प्रति। दोनों ही निष्ठाएँ राष्ट्रीयता की स्थापना के लिये अनिवार्य हैं। या फिर यह कहा जाय कि दोनों प्रकार की अनिष्ठाएँ राष्ट्र अथवा राज्य के लिये घातक हैं। सम्भवतः नयशास्त्रपारग भारवि ने इसी दृष्टि से कहा था--
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।। (किरातार्जुनीयम् 1.5.)।

सेना की अनिष्ठा का परिणाम तो हम निरन्तर ही देख रहे हैं। बांग्लादेश, पाकिस्तान, ईरान, पनामा, फिज़ी तथा फिलीपाइन्स की सैन्यक्रान्तियाँ इसका प्रमाण हैं। अमरकोषकार ने जनता (पौराणां श्रेणयस्तथा) को भी आठवीं प्रकृति स्वीकार किया। अभी हाल में ही रूमानिया, नेपाल तथा जर्मनी की जनता ने उन देशों की शासनसत्ता का स्वरूप ही बदल कर अपनी दुर्वार शक्तिमत्ता का परिचय दिया है। इस प्रकार निश्चित है कि अनिष्ठा चाहे प्रकृतियों के बीच में हो चाहे शासनसत्ता और प्रकृतियों के बीच में- वह राष्ट्रीयता की स्थापना में बाधक अवश्य है। परन्तु यह प्रश्न भी विचारणीय है कि प्रकृतियों में उत्पन्न अनिष्ठा के लिये कौन उत्तरदायी है? आचार्य कौटिल्य शासक (राजा) को ही जिम्मेदार मानते हैं-
सम्पादयत्यसम्पन्नाः प्रकृतीरात्मवान्नृपः।
विवृद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान्।।
आत्मसम्पन्न नरेश असम्पन्न (गुणहीन) प्रकृतियों को भी सम्पन्न (गुणयुक्त, राष्ट्रानुरागी) बना देता है। परन्तु अनात्मवान् राजा विवृद्ध एवं अनुरक्त प्रकृतियों को भी नष्ट कर देता है।

संक्षेप में यही राष्ट्रीयता की व्याख्या है। यह बात और है कि आज भारत की राजनैतिक स्थिति, कौटिल्य के युग से, सर्वथा भिन्न हो गई है। तब भारत में राजतन्त्र था, आज लोकतन्त्र है। फिर भी राष्ट्रीयता के स्वरूप में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। आज भी राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने अथवा विध्वस्त करने का सारा दायित्व राष्ट्र की संसद अथवा उससे भी अधिक प्रशासन का है। यदि प्रशासन का मंत्रिमण्डल कौटिल्य के आदर्श के अनुरूप हो, सेना-कोष-मित्र भी गुणयुक्त हों- तो निश्चय ही राष्ट्रीयता का विकास हो सकता है। महाकवि कालिदास ने तो राजा को भी लोक-सेवक ही स्वीकार किया है। राजा यदि अधिनायक न बन जाय तो राजतन्त्र और लोकतन्त्र में भेद ही क्या है?

(पूर्व कुलपति - डॉ. सम्पूर्णानन्द वि.वि., वाराणसी)
समराइज विला, लोअर समर हिल
शिमला - 171005
मो. 9418041537

●

भरहुत स्तूप अभिलेख : भारतीय इतिहास की एक समस्या एवं समाधान

डॉ. ओम प्रकाश लाल श्रीवास्तव

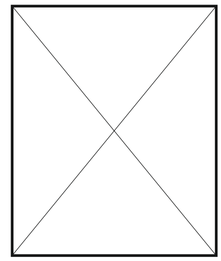

भरहुत स्तूप की पूर्वी द्वार शाखा पर लगभग पहली शताब्दी ईसा पूर्व की ब्राह्मी लिपि में चार पंक्तियों में उत्कीर्ण अभिलेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, जो इस प्रकार है[1]-

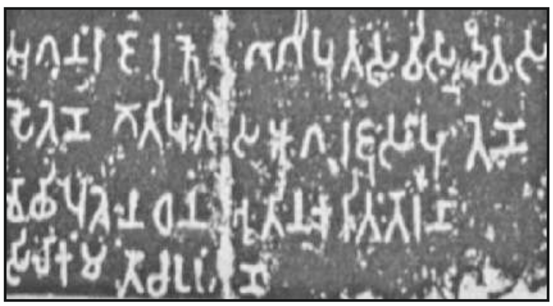

1. सुगनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस
2. पौतेण गोतिपुतस आगरजुस पूतेण
3. वाछिपुतेन धनभूतिन कारितं तोरना
4. सिला कंमंतोच उपंण

इस अभिलेख के अनुसार गार्गीपुत्र राजा विश्वदेव के पौत्र गौप्तीपुत्र अगरजु के पुत्र, वात्सीपुत्र धनभूति के द्वारा शुंगों के राज्य में तोरण और प्रस्तर निर्मित प्राकारादि बनवाया गया। स्पष्ट है कि यह कार्य जहाँ (भरहुत में) सम्पन्न हुआ और उससे सम्बन्धित अभिलेख उत्कीर्ण कराया गया है, वह शुंगों के राज्य में था। 'सुमनं रजे' का उल्लेख करने वाले इस अभिलेख को प्रकाशित करने वाले हुल्त्स ने इसे 'शुंग अभिलेख' कह दिया हैं[2], जब कि यह अभिलेख शुंगों का न होकर धनभूति का है, जिसने शुंगों के राज्य में 'कर्मवाच्य' में अपने निर्माणादि कार्य से सम्बन्धित अभिलेख उत्कीर्ण कराया था।

धनभूति के अभिलेख को हुल्तस द्वारा 'शुंग अभिलेख' कह देने से ही मूल समस्या उत्पन्न हुई और विद्वानों ने इसके समाधान के लिए 'शुंग राजा' को खोजना प्रारम्भ कर दिया, जब कि इस अभिलेख में किसी 'शुंग राजा' की नहीं, बल्कि 'शुंग राज्य' की चर्चा की गयी है। 'शुंग राजा' की खोज के क्रम में प्रो. ए. एस. अल्तेकर ने 'शुंगराज' और प्रो. के. डी. बाजपेयी ने 'शुंगवर्मा' से सम्बन्धित, क्रमशः 'A coin of Shungraja'[3] और 'A coin of Shunga Varma'[4] शोधपत्र प्रकाशित कर दिया।

प्रो. अल्तेकर ने श्री बी. एम. व्यास के संग्रह का एक ताम्र सिक्का प्रकाशित किया था, जिसका प्राप्ति-स्थल अंकित नहीं था, किन्तु उन्होंने इसे कौशाम्बी क्षेत्र का माना है। इस सिक्के

के पुरोभाग पर ब्राह्मी लिपि में 'शुंगराजस' लेख के नीचे कुछ चिह्नों का अंकन तथा पृष्ठ भाग पर वामावर्त्त वृषभ (नन्दी) का अंकन बताया है।[5] प्रो. अल्तेकर के अनुसार इसी प्रकार के 'शुंगराजस' उल्लेख वाले, कौशाम्बी से प्राप्त, पटना संग्रहालय में सुरक्षित सिक्के को डॉ. जायसवाल ने J.B.O.R.S., जिल्द 20, पृ. 294-95, फलक 17, नं. 2 में प्रकाशित किया था।[6]

प्रो. अल्तेकर ने इन सिक्कों के सन्दर्भ में पुष्यमित्र को 'शुंग वंश' का मानते हुए हर्षचरित[7] के वर्णन के आधार पर कह दिया कि पुष्यमित्र ने मौर्य सम्राट् बृहद्रथ की हत्या करके अन्यायपूर्वक मगध साम्राज्य पर अधिकार कर लिया था।[8] अतः शुंग शासक व्यक्तिगत नाम के स्थान पर अपने वंश (शुंग) के नाम से ज्ञात है। इसलिए प्रारम्भ में सिक्के सामान्यतया लेख 'शुंगराजस' (Shungrajasa = of the Shunga king) के साथ प्रचलित किये गये। ऐसी स्थिति में 'शुंगराजस' लेख वाले ये सिक्के शुंग शासन के प्रारम्भिक काल अर्थात ईसा पूर्व 180-150 वर्ष के बीच के हैं जिन पर अंकित लेख की लिपि भी इसी काल की ज्ञात होती है।[9]

किन्तु प्रो. अल्तेकर का मत स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि अभिलेखीय एवं मौद्रिक साक्ष्यों से यह प्रमाणित हो चुका है कि पुष्यमित्र का वंश (कुल) बैम्बिक था, शुंग नहीं।[10] इसी क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि पुष्यमित्र के दो प्रकार के सिक्के प्राप्त हुए हैं और दोनों प्रकार के सिक्कों पर तत्कालीन ब्राह्मी लिपि में शासक का नाम 'पुसमितस' लेख अंकित है। एक प्रकार के सिक्के के पुरोभाग पर केवल 'पुसमितस' लेख अंकित है तथा पृष्ठ भाग पर पाँच अरों वाला चक्र, स्थाणु, उज्जैन चिह्न, हल और कटार अंकित है। किन्तु दूसरे प्रकार के सिक्के के पुरोभाग पर दो पंक्तियों में लेख 'पुसमि, तस', के बीच में उज्जैन चिन्ह तथा नीचे नदी में मत्स्य एवं पृष्ठ भाग पर वेदिका में वृक्ष, स्रुवा, इन्द्रध्वज और वृषभ (नन्दी) का अंकन है[11] -

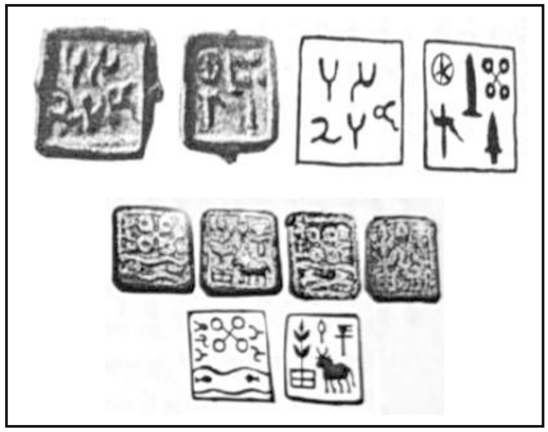

कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र के अनुसार पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र विदिशा में शासन कर रहा था। ग्रंथ उसे 'विदिरोश्वर' कहा गया है।[12] उत्तर प्रदेश के झाँसी जिले में स्थित एरच से अग्निमित्र की एक मुद्रा पायी गयी है, जिस पर तत्कालीन ब्राह्मी लिपि में (Seal) 'वेदराज अगिमितस' (of Agnimitra, the ruler of Vidisa) उत्कीर्ण है।[13] इस प्रकार अग्निमित्र को स्पष्ट रूप से विदिशा का राजा कहा गया है जिसमें कालीदास के साहित्यिक की पुष्टि हो जाती है -

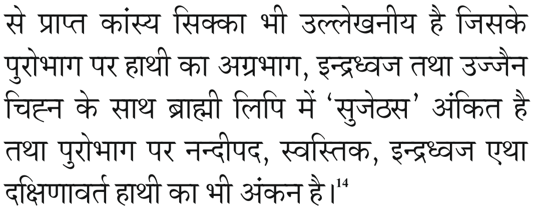

इसी क्रम में पुष्यमित्र के वंशज सुज्येष्ठ का एरच से प्राप्त कांस्य सिक्का भी उल्लेखनीय है जिसके पुरोभाग पर हाथी का अग्रभाग, इन्द्रध्वज तथा उज्जैन चिह्न के साथ ब्राह्मी लिपि में 'सुजेठस' अंकित है तथा पुरोभाग पर नन्दीपद, स्वस्तिक, इन्द्रध्वज एथा दक्षिणावर्त हाथी का भी अंकन है।[14]

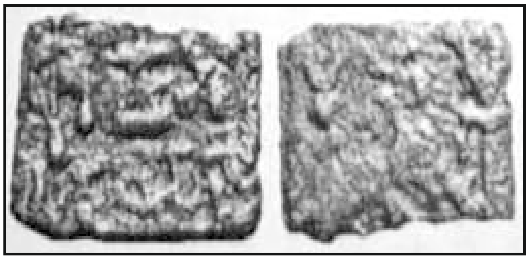

इस प्रकार प्रमाणित होता है कि पुष्यमित्र एवं उसके वंशजों ने अपने सिक्कों तथा मुद्रा पर स्पष्ट रूप से अपना नाम अंकित किया है, उसको गोपनीय नहीं रखा है। अतः किसी भी प्रकार की ऐतिहासिक विभ्रम की स्थिति नहीं होनी चाहिए।

जहाँ तक प्रो. अल्तेकर द्वारा 'शुंगराजस' लेख के साथ प्रकाशित सिक्के की बात है, उसके पुरोभाग पर लेख एवं अन्य चिह्न भी स्पष्ट नहीं हैं। पृष्ठ भाग पर वृषभ भी अस्पष्ट है। उल्लेखनीय है कि ब्राह्मी लिपि में 'अ' और 'श' में बहुत ही कम अन्तर होता है। सिक्के पर पहला अक्षर स्पष्ट न होने के कारण 'अ' को 'श' पढ़ लिया जाना प्रतीत होता है। उन्होंने लिखा भी है कि यदि स्पष्ट सिक्का मिल जाय तो इस समस्या का समाधान हो सकता है।

इस सन्दर्भ में कौशाम्बी से ही प्राप्त कुछ सिक्के उल्लेखनीय हैं, जिनके पुरोभाग पर ब्राह्मी लिपि में 'अगरजुस' ठीक भरहुत अभिलेख में उत्कीर्ण 'अगरजुस' की तरह है। उसके साथ उज्जैन चिह्न, नन्दी पद एवं वेदिका में वृक्ष तथा पृष्ठ भाग पर वामावर्त्त वृषभ के आगे ध्वज भी उत्कीर्ण है।[15]

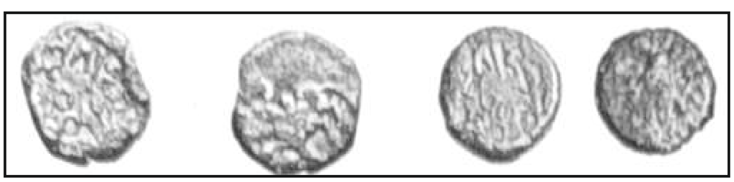

यह सिक्का भी उसी 'अगरजु' का है, जिसके पुत्र धनभूति ने भरहुत में अभिलेख उत्कीर्ण कराया था। अतः 'अगरजु' के सन्दर्भ में स्थिति स्पष्ट हो जाने पर प्रो. अल्तेकर द्वारा प्रकाशित सिक्का एवं उससे अनुमानित सम्भावना स्वतः समाप्त हो जाती है और यह प्रमाणित हो जाता है कि प्रो. अल्तेकर द्वारा प्रकाशित सिक्का 'शुंगराज' का न होकर कौशाम्बी के शासक 'अगरजु' का है। इस सिक्के की लिपि भी भरहुत अभिलेख में उत्कीर्ण 'अगरजु' जैसी ही है।

जहाँ तक भरहुत अभिलेख में 'सुगनं रजे' (शुंग शासक और उनके राज्य) के पहचान का प्रश्न है, इस अभिलेख से ही स्पष्ट है कि शुंग स्थानीय शासक थे और उनका राज्य भरहुत और उसके आसपास के क्षेत्रों तक सीमित था।[16] इस अभिलेख को उत्कीर्ण कराने वाला धनभूति कौशाम्बी का शासक था। उसका राज्य शुंगों के राज्य से अलग और स्वतन्त्र था। अतः उसने अपने अभिलेख को लिखवाते समय उस स्थान के लिए 'सुगनं रजे' का प्रयोग किया है। कौशाम्बी के शासक धनभूति के पिता अगरजु, जिसका नाम भरहुत अभिलेख में उत्कीर्ण है, का ही सिक्का कौशाम्बी से प्राप्त हुआ है, जिसको भ्रमवश 'शुंगराज' बता दिया गया है। यदि वास्तव में अगरजु ही शुंगराज (शुंग शासक) होता, तो उसका पुत्र धनभूति अपने ही राज्य के लिए शुंगराज्य (सुगनं रजे) का प्रयोग क्यों करता? सुगनं रजे, के प्रयोग से ही स्पष्ट है कि धनभूति ने अपने राज्य से अलग शुंगों के राज्य में यह अभिलेख उत्कीर्ण कराया था।

इसी क्रम में प्रो. बाजपेयी द्वारा प्रकाशित कौशाम्बी से प्राप्त 'शुंगवर्मा' (Coin of Shungavarma) के सिक्के की भी चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होती है। उन्होंने इस सन्दर्भ में उल्ल्लेख किया है कि कन्नौज से प्राप्त एवं एलन द्वारा प्रकाशित विष्णुदेव के सिक्के के पुरोभाग पर चौखुटे के भीतर तीन चिह्न बने हैं और पृष्ठ भाग पर यूप के सामने अश्व खड़ा है[17] वैसा ही अंकन इस सिक्के पर भी है, किन्तु लेख 'शुंगवर्मा' (of Shungavarma) है।[18] स्पष्ट है कि विष्णुदेव और

इस सिक्के की तकनीक और चिह्न एक जैसे हैं। अतः उनमें एक विशेष सम्बन्ध है।

प्रयागराज के श्री बद्री प्रसाद वर्मा ने दो ताम्र सिक्कों के छायाचित्र प्रदान करते हुए बताया था कि ये सिक्के कन्नौज के हैं। इनमें एक सिक्के के पुरोभाग पर चौखुटे के भीतर तीन चिह्नों के साथ लेख 'विष्णुदेवस' अंकित है एवं पृष्ठ भाग पर यूप के सामने अश्व खड़ा है, तथा दूसरे सिक्के के पुरोभाग पर इन्हीं तीन चिह्नों के साथ लेख 'अग्निवर्मस' स्पष्ट रूप से अंकित है और पृष्ठ भाग पर यूप के सामने अश्व भी खड़ा है, किन्तु सिक्का घिस जाने के कारण पृष्ठ का चित्र कुछ धुंधला हो गया है।[19]

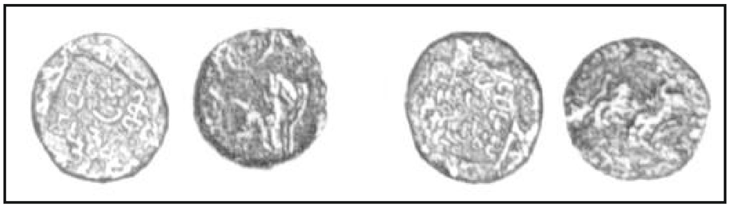

एलन की सूचना के अनुसार विष्णुदेव का सिक्का कन्नौज से मिला था, किन्तु सिक्के के काल आदि पर विचार किया जाय तो ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में ऐतिहासिक दृष्टि से कन्नौज की ऐसी स्थिति ज्ञात नहीं होती कि उसे राजधानी बनाकर सिक्का जारी किया जाय। कन्नौज प्राचीन काल में दक्षिण पंचाल के अन्तर्गत था, जिसकी राजधानी कम्पिल (काम्पिल्य) थी। अतः अभी तक विष्णुदेव एवं अग्निवर्मा ऐसे दो शासक ज्ञात हुए हैं जिनको स्पष्ट रूप से दक्षिण पंचाल का शासक स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि उत्तर पंचाल में एक नामान्त (अग्निमित्र एवं इन्द्रमित्र आदि) वाले शासकों के सिक्कों के पृष्ठ भाग के प्रतीकों में भी भिन्नता होती है, परन्तु दक्षिण पंचाल के सिक्कों पर भिन्न नामान्त (देव और वर्म) वाले शासकों के सिक्कों के पृष्ठभाग के प्रतीक एक जैसे हैं और यही दक्षिण पंचाल के शासकों के सिक्कों की अपनी महत्वपूर्ण विशेषता है।

इस सन्दर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ब्राह्मी लिपि में 'अ' और 'श' की आंशिक साम्यता के कारण जिस प्रकार प्रो. अल्तेकर द्वारा 'अगरजुस' को 'सुगराजस' पढ़ लिया गया, उसी प्रकार प्रो. बाजपेयी द्वारा भी 'अग्निवर्मस' को 'शुंगवर्मस' (Shungavarmasa) पढ़ लिया गया था, जब कि अभी तक 'शुंगराज' या 'शुंगवर्मा' नामक किसी भी राजा का सिक्का प्राप्त नहीं हुआ है, जिससे उनके मतों की पुष्टि हो सके। इसी प्रकार डॉ. डी. सी. सरकार के अनुमान (King Vishvadeva appears to have been the feudatory of a Later Shunga King of Vidisha) की भी पुष्टि नहीं हो सकती कि भरहुत स्तूप अभिलेख में उल्लिखित विश्वदेव विदिशा के शुंग शासक का सामन्त था,[21] क्योंकि विश्वदेव स्वयं राजा था, जिसके पुत्र अगरजु के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं।

सन्दर्भ

1. Hultzsch, E. The Sunga inscription of the Bharhuta Stupa, Indian antiquary, Vol. XXIV (May 1885), p. 138-139. **2.** Ibid. **3.** Altekar, A.S. : A Coin of Sungaraja J.N.S.I., Vol. IV (1942), p. 14-16. **4.** Bajpai, K.D.: A Coin of Sungavarma J.N.S.I., Vol XXVII, p. 188-90; Indian Numismatic studies, Abhinav Publications, New Delhi 1976, p. 44-45. **5.** Altekar, A.S. : A Coin of Sungaraja J.N.S.I., Vol. IV, p. 14-16. **6.** Idbid. 7. प्रज्ञा दुर्बलं च बलदर्शन व्यपदेशदर्शिताशेषसैन्यः सेनानीननार्यो मौर्यं बृहद्रथं पिपेष पुष्यमित्रः स्वामिनम्। हर्षचरित, उच्छ्वास 6। **8.** Altekar, A.S. : A Coin of Sungaraja J.N.S.I., Vol. 4 (1942), p. 14-16. **9.** Idbid. **10.** श्रीवास्तव, ओम प्रकाशलाल। पुष्यमित्र का कुल बैम्बिक था, शुंग नहीं, चितिवीथिका, इलाहाबाद संग्रहालय, भाग 9 एवं 10, अंक 1-2 (2003-08), पृ. 71-75; इतिहास एवं पुरातत्त्व के नवीन आयाम, बी. आर.

पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली, 2021, पृ. 9-14. Pushymitra's Dynastic Name : Baimbika, Journal of Ganganath Jha, Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Vol. LXIV (1-14), Jan-Dec. 2008, p. 9-13; Erach Rediscovered : coins, Inscription, Seals and Sealings, Rajgor's Heritage Hub, Mumbai, 2020, p. 112-115. **11.** Srivastava, Om Prakash Lal : Coin of Pushyamitra : Reappraisal, J.N.S.I. Vol-LXXVI (2014), p. 40-43; Erach Rediscovered : coins, inscriptions, seals and sealing's, Rajort's Heritage Hub, Mumbai, 2020, p. 116-118. **12.** परिव्राजिका (सदृष्टिक्षेपम) देवी। अतः परं पुनः कथयिष्यामि। अत्र भगवान्विदिशेश्वर सम्प्राप्तः। मालविकाग्निमित्र, अंक 6। **13.** Srivastava, Om Prakash Lal : Stone seal of agnimitra form Erach, Prachya Bodha, Indian Archaeology and Tradition (Prof. T.P. Verma, Festhrift), B. R. Publishing corporation, Delhi 2014, p.285-287; Earch Rediscovered : coins, inscriptions, seals and sealing's, Rajort's Heritage Hub, Mumbai, 2021, p. 78-79. **14.** Srivastava, Om Prakash Lal : A rare coin of Sujyeshtha from Erach, Numismatic Digest, Vol. 41 (2017), p. 10-12; Coin of Sujyeshtha Earch Rediscovered : coins, inscriptions, seals and sealing's, Rajort's Heritage Hub, Mumbai, 2020, p. 54. **15.** श्रीवास्तव, ओम प्रकाश लाल : इतिहास एवं पुरातत्त्व के नवीन आयाम, बी.आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली, 2021, पृ. 67-72। **16.** वही। **17.** Allan, J. : Catalogue of the coins of Ancient India, London, 1936, p. 147, pl. 19, 3. **18.** Bajpai, K.D.: A Coin of Sungavarma J.N.S.I., Vol XXVII, p. 188-90; Indian Numismatic studies, Abhinav Publications, New Delhi 1976, p. 44-46. **19.** श्रीवास्तव ओम प्रकाश लालः इतिहास एवं पुरातत्त्व के नवीन आयाम, बी.आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली, 2021, पृ. 77-80। **20.** वही। **21.** Sarcar, D.C : Selected Inscriptions, Vol. 1, Calcutta, 1942, p. 90, f.n. 1; यह संयोग ही है कि 1942 में प्रो. अल्तेकर ने भरहुत अभिलेख में उल्लिखित 'अगरजु' को 'शुंगराज' और 1942 में ही डॉ. सरकार ने अगरजु के पिता राजा विश्वदेव को शुंग शासक का सामन्त होने का अनुमान किया था, किन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि उस समय विदिशा के शुंग शासक का नाम क्या था?

पूर्व पंजीयन अधिकारी (पुरातत्व विभाग)
12/1 ए, मोतीलाल नेहरू रोड
बेलवीडियर प्रेस कम्पाउंड
प्रयागराज-211002
मो. 07355228322
ई-मेल: oplalsrivastava@gmail.com

सतना (म. प्र.) के निकट स्थित भरहुत बौद्ध स्तूप का निर्माण तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व अर्थात अब से लगभग 2275 वर्ष पूर्व मौर्य सम्राट अशोक ने करवाया था जिसके बलुआ पत्थर के तोरण द्वार एवं 9 फीट ऊँची वेदिका (रेलिंग) का निर्माण पहली शताब्दी ईसा पूर्व अर्थात अब से लगभग 2125 वर्ष पूर्व हुआ जिनमें भगवान बुद्ध के जीवन-प्रसंगों, बौद्ध जातक कथाओं आदि का काष्ठ-शिल्प जैसी बारीकी जैसा सुन्दर उत्कीर्णन अद्‌भुत है। सन् 1873 में सर अलेक्जेंडर कनिंघम द्वारा प्रकाशित यह भरहुत स्तूप मौर्य पश्चात निर्माण कला का उल्लेखनीय उदाहरण है। - संपादक

●

पुस्तकों का अध्ययन स्थायी प्रसन्नता प्रदान करता है।

– लेडी मांटेग्यू

जो पुस्तक सबसे अधिक सोचने को मजबूर करे वही उत्तम पुस्तक है।

– पंडित जवाहरलाल नेहरू

वैदिक कालीन संगीत में प्रकृति एवं मानव

डॉ. वन्दना चौबे

संगीत वेदों का मूलाधार तत्व है। वेद भारतीय संगीत के उद्‌गमस्थल और प्राचीनतम रूप के संरक्षक माने गये हैं। ऋग्वेद मंत्रद्रष्टा ऋषियों का आर्षकाव्य है, सामवेद ऋग्वेदीय ऋचाओं का संगीतबद्ध संग्रह है। यजुर्वेद प्रायः गद्यात्मक है तथा अथर्ववेद अर्थवन (मांगल्यप्रद) और आंगिरस (अभिचार विषयक) मंत्रों का संकलन है। 'गंधर्ववेद' सामवेद का उपवेद कहा गया है जो उस महत्वपूर्ण संगीत का आधार है जो देवार्चन से पृथक था और जिसका उद्देश्य प्रधानतः लोकरंजन था।[1]

वैदिक युग में संगीत मनुष्य के अन्तर में था। प्रकृति की प्रजा पशु-पक्षी के कलकण्ठ में गान था, अनुकरणवृत्ति से मनुष्य अपने मन की भावना प्रकृति के सामने प्रकट करता रहा। सर्वशक्ति के समक्ष ही अपने अन्दर की अनुभूति व्यक्त करता रहा। इस अभिव्यंजना में स्वर-वैचित्र्य भले ही न हो, किन्तु 'सुर' यानि धुन या स्वर समष्टि थी, जिसमें एक, दो या तीन स्वर और सरल छंद थे, उनकी भाषा निरर्थक थी। शिक्षा ग्रंथों (नारदीय माण्डुकी एवं याज्ञवलक्य) की यह उक्ति प्रकृति की प्रजा की ध्वनि के साथ सादृश्य को प्रमाणित करती है -

षड़जे वदति मयूरो गाभो रंभति चर्षभः।
अजा वदति गांधारो क्रौंचनादस्तु मध्यमे।।
पुष्पसाधरणेकाने कोकिलः पंचम स्वरे।
उश्वस्तु द्यैवते प्राह कुंजरस्तु निषादवान।।

वस्तुतः भारतीय संगीत प्राकृतिक व वैदिक सभ्यता का उपादान है। भारतीय कलाओं में संगीत सर्वोत्तम माना गया है। संगीत के क्रमिक विकास का रूप हमें ब्राह्मण साहित्य, शिक्षा-ग्रंथ, प्रतिशाख्य में मिलता है, किन्तु इसके पूर्व सरल सहज प्रार्थना आवेदन में ही संगीत रूपायित था और स्त्रोभ, गान, उद्‌गान, गाथा ही संगीत के रूप थे। यजुर्वेद के समय आहुति-दान के साथ ही विविध वाद्यों के साथ संगीत गान होता था।

साम को वाक और प्राण की समवेत मूर्ति कहा गया है। वाक शक्ति या प्रकृति और प्राण शिव या पुरुष में कल्पित है। इस शिव शक्ति के मिलन को ही संगीत सृष्टि का कारण बताया गया है। वास्तव में शब्द से ही संगीत की सृष्टि है। प्राणवायु और इच्छा शक्ति के मिलन से

सूक्ष्म स्वर नाद की सृष्टि है। नाद के दो रूप हैं, आहत और अनाहत। आहत नाद विभिन्न रूप के परिवेश में कंठ के माध्यम से बाहर प्रकट होता है और अनाहत नाद आंतरिक ध्वनि है जिसे ऋषि-मुनि साधना के बल पर सुन सकते हैं। देवताओं के उद्‌बोधन व आविर्भाव के लिए जहाँ जप, तप व ध्यान आदि साधन बताये गये हैं वहीं ध्वनि व नाद भी एक साधन है।

वेदों में 'साम' गान का एक विशिष्ट पारंपरिक रूप और निश्चित गायन प्रणाली थी। (छन्दोबद्ध ऋक्‌मंत्रों का स्वरों में गाया जाना सामगान कहलाता है) सामगान में सप्तस्वरों का प्रयोग 'साम प्रतिशाख्य पुष्पसूत्र' नामक ग्रंथों में पाया जाता है, यथा -

'एतेर्भावैश्च गायन्ति सर्वाः शास्त्राः पृथक-पृथक।
पंचस्ववेव तु गायन्ति भूमिष्ठानि स्वरेषु तु।।
सामानि षटषु चान्यानि सप्तषु द्वे तु कौथुमाः।
उनानामन्यथागीतिः पदानामधिकाश्च ये।।[2]

वैदिक संगीत नामानुरूप यज्ञादि अनुष्ठानों का अंग था। पाठ्य दृष्टि से जिन तीन स्वरों का उपयोग किया जाता था उन्हें उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित कहते थे।[3] इन्हें स्थान स्वर कहा गया है। बाद में इन्हें मन्द्र, मध्य और तार की संज्ञा दी गयी। इस प्रकार इन तीन स्थान स्वरों से लौकिक सात स्वरों की सृष्टि हुयी यथा- उदात्त से गांधार एवं निषाद, अनुदात्त से ऋषभ धैवत तथा स्वरित से षड़ज, मध्यम एवं पंचम।

साम संगीत के विकास के साथ सप्त स्वर भी विकसित हुए। साम संगीत में स्वर संज्ञाओं का क्रम इस प्रकार है - क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वार्य। नारदीय शिक्षा में साम तथा लौकिक स्वरों में सामंजस्य स्थापित किया गया है। उसके अनुसार सामगायकों का 'प्रथम' संज्ञक-स्वर वेणु का माध्यम है, द्वितीय स्वर वेणु का गन्धार, तृतीय स्वर वेणु का ऋषभ, चतुर्थ स्वर षड़ज है, पंचम स्वर धैवत है, पष्ठ स्वर निषाद है तथा सप्तम स्वर पंचम का पर्याय है।[4] स्वरों की यह परिभाषा संज्ञायम थी।

स्वरों के इस विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि वैदिक काल में ही सात लोकों के समान पूर्ण सप्तक की स्थापना हो चुकी थी। सात लोकों में से 1. भूः 2. भुवः 3. स्वः 4. महः 5. जनः 6 तपः तक सभी संगीत चलते हैं। छठा तपः कुछ कठिन है परन्तु माना जाता है कि मदमस्त हाथी, क्रुद्ध नाग छठे स्वर के ही वश में होते हैं। इसलिए 'नागस्वर' और 'लोकों' में 'तपः' लोक कहते हैं। सातवां लोक 'सत्य' लोक है, जिसका प्रतीक 'सा' है। यह सत्य लोक 'सप्तम' स्वर ही जीवन और प्रकृति की सार्थकता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य प्रकृति और ब्रह्माण्ड को संगीत के माध्यम से एकाकार करना मानता है। वेदों में गायन के साथ ही वाद्य तथा नृत्य का भी उल्लेख मिलता है- महसे वीणावादम् क्रोशाय तूणवध्यं अव्यरसपराय-शंखध्यम्।[5] महसे वीणावादम् पाणिध्यं तूणवध्यम तान् नृत्ताय आनन्दाय तलवम्।[6] इन मंत्रों में वीणा वादन, डोल, ढक्का या तुरही बजाना, शंख बजाना, हाथों से तूणव आदि बजाना, तलब अर्थात् करताल बजाना और नृत्य का संकेत स्पष्ट रूप से है। ऋग्वेद के 'उषस सूक्त' में नवोदित उषा की स्वर्णिम आभा को देखकर वैदिक ऋषि को सुसज्जित नर्तकी का स्मरण हो आता है। नृत्यकला कुशल तथा यौवन-सम्पन्न नारी के समान उषा का अंगाभिनय मुग्धकारी है।[7]

नटराज शिव सर्वश्रेष्ठ नर्तक हैं। ऋग्वेद में शिव के समान रुद्र दर्शाये गये हैं। रुद्र आंधी, तूफान व प्रलय को लाने वाले देवता हैं। उनकी गति प्रचण्ड तालात्मक रूप लिये हुए है। वे आंधी के वेग से चलते हुए पृथ्वी आकाश को कंपित करते हैं, अपने प्रचण्ड वेग के ताल में एक-एक भाव को भी व्यक्त करते हैं। इस तालमय प्रचण्ड प्रलय का प्रथम रूप ही ताण्डव का प्रारम्भिक नृत्य रूप दिखायी देता है। रुद्र अपने संहार के द्वारा अपना सर्वशक्तिमान रूप

प्रदर्शित करते हैं, इस प्रकार रुद्र का प्रचण्ड तालात्मक व शक्तिशाली रूप एक ओजस्वी सृजनकर्ता का रूप प्राप्त करता है। नृत्य का यह आधार रूप मनुष्यों में भय व्याप्त करता है, विस्मय कर बोध कराता है और रक्षा के लिए प्रेरित हो, भक्ति को उत्पन्न करता है। जबकि शक्ति, शिव का एक समाहित अंग है, शक्ति का प्रारम्भ हमें ऋग्वेद से ही दिखाई देता है। रुद्र की शक्ति का जो स्वरूप है वह नटराज शिव से पृथक नहीं कहा जा सकता। उनका स्वरूप आकाश के सदृश ही विशाल और अनन्त कहा गया है जो शिव के समान रक्षात्मक और विनाशकारी पक्ष को प्रकट करता है। ऋग्वेद रुद्र शिव के ही समान जटाजूटधारी व महान तेजस्वी रूपवाले हैं। यज्ञ में वे सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में आह्वानित किये जाते हैं।[8] यहाँ रुद्र के साथ मरुत का संबंध भी दिखाई देता है।[9] एक स्तोत्र में मरुदगण को हृदय प्रदेश में आभूषण धारण किये नर्तनशील कहा है। यहाँ मरुत को नर्तन करते हुए माना गया है। यहाँ प्रत्यक्ष रूप से नृत्य का प्रदर्शन है जिसमें मरुत का सीधा संबंध नृत्य से जोड़ा गया है। यहीं कड़ी मरुदगण को भी नृत्य से जोड़ती है।[10]

यजुर्वेद में नृत्य, गीत व वाद्य कलायें नटराज शिव की ही अभिव्यक्ति हैं और शिव कलाओं के स्रोत हैं, जिनका प्रारम्भिक रूप वैदिक काल से ही रुद्र के रूप में कलाओं सहित हमारे सम्मुख प्रदर्शित होता है। ये कलायें शिव से प्रारम्भ होकर मनुष्यों में प्रचलित हुई। इस युग में नृत्य के लिए सूत व गीत के लिए शैलूष संज्ञाओं का प्रयोग हुआ- नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं।[11] शैलूष नटों का एक भेद है। गाने बजाने का काम ये किया करते थे। सूत पौराणिक युग में ऐतिहासिक कथावाचक के रूप में दिखाई देते हैं। वर्तमान समय में कथक या कत्थक यही कार्य करते हैं[12] जो कि शास्त्रीय नृत्य कत्थक शैली के जन्मदाता माने जाते हैं। यजुर्वेद में नृत्य के साधक वाद्य 'मृदंग', 'वीणा वादक' व 'वंशी वादक' तथा गणक 'तालधारी' का भी उल्लेख प्राप्त होता है। 'गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्न तूणवध्वं नान्नृत्ताया नन्दाय तलवम्।[13] नृत्य के तालधारी की पुष्टि 'नट्टयनार' दक्षिण के नृत्याचार्यों से होती है जो कि नृत्य का संचालन बोल बोलते हुए हाथ से ताल देकर नृत्य का निर्देश करते हैं। इसका आधार पूर्ण रूप से गणक में प्रदर्शित होता है, जो यजुर्वेद में उल्लिखित है। आज भी शास्त्रीय नृत्यों- भरतनाट्यम, उड़ीसी, कथकली तथा मणिपुरी में आचार्य ताल का संचालन मजीरे द्वारा ताल धारण कर करता है।

अथर्ववेद में नृत्य को प्रकृति के सादृश से बताते हुए गंधर्वों को मोर की भांति नाचते हुए गीतमय वाणियों वाला बताया गया है इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर नृत्य को प्रकृति से जोड़ते हुए नारियों की तरल गति को देखकर मंत्रकर्ता को वर्तुलाकार नृत्य करने वाली नर्तकियों के चपल पदक्षेप का भी स्मरण हो जाता है - 'तयोरहं परिनृत्यनन्तेरिव न वि जानायापि यतरा पुरस्तात"[14] एक स्थान पर दुन्दुभि से संबोधन किया गया है।[15] जैसे अधिषण काल में पर्वत अपने लघु खण्डों को दबाता हुआ नाचता है वैसे ही दुन्दुभि भी नृत्य करती जाये।

वेदों में संगीत वाद्यों के अन्तर्गत 'वाण' नाम के एक वाद्य का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है यथा- 'को वाणं को नृत्तो दधी[16] धमंतो वाणं"[17]। वैदिककालीन 'वाण' ही वीणा का जनक है। इसी वाद्य के आधार पर बाद में सारे तन्तु वाद्यों का निर्माण हुआ। वीणा के विषय में उस समय प्रचलित एक किंवदन्ती इस प्रकार है - 'वाक' देवी एक बार देवताओं को छोड़कर चली गयी। यद्यपि इसका कोई कारण वर्णित नहीं है तथापि माना जा सकता है कि वह देवताओं की किसी बात पर उनसे रुष्ट होकर उन्हें छोड़कर चली गई और वनस्पति पेड़-पौधों में प्रवेश

कर गई, ताकि देवताओं का उसके बिना आहुति (यज्ञों के अन्तर्गत आहुति एवं बली) कार्य सम्पन्न न हो सके। रुष्ट वाक देवी को मनाकर वापस लाने हेतु देवताओं ने वनस्पति से बने हुए अर्थात् लकड़ी से निर्मित संगीत वाद्यों (वीणा, तूणव, दुंदुभि) का वादन प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार इन वाद्यों के माध्यम से वाक् देवी नाद रूप में व्यक्त हुई। तब से वीणा को वाक देवी का साकार रूप माना जाने लगा। 'वाग्वैदेवेभ्ये पाक्रामद्यज्ञातिष्ठमाना सा वनस्पतीन, प्राविशत् सैशावाग्वनस्पतिषु वदति या दुन्दुभौ या तूणवे या वीणायाम्।[18] वाणः शततन्तुर्भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठन्ति।[19] अर्थात वाक देवी दुन्दुभि, तूणव, वीणा आदि वाद्यों द्वारा ध्वनित होती है। तंत्री वाद्यों में वाण का महत्वपूर्ण स्थान है।

संगीत (वाद्य) का सम्बन्ध प्रकृति के साथ-साथ मानव शरीर से भी है। भरत ने इसी विचार से मानव शरीर को 'शारीरिक वीणा' कहकर संबोधित किया है। स्वरों की उत्पत्ति सर्वप्रथम शरीर से होती है, जिसका अनुकरण तत्, सुषिर, अवनद्य एवं घन वाद्यों से होता है। ऋग्वेद के ऐतरेय आरण्यक में देवी तथा मानुषी वीणा का सुन्दर सामंजस्य उपस्थित किया गया है। 'अथ खल्वियं दैवी वीणा भवति तद्नुकृतिरसौ मानुषी वीणा भवति यथास्याः शिरः एवमुष्याः शिर यथाऽस्या उदरमेवममुष्या अम्मणम् यथाऽस्यै जिहैवमुमुष्टै वादनम् यथाऽस्यास्तंत्रय एवमुष्या अंग्रुलयः यथाःऽस्याः स्वराः यथाऽस्या स्पर्षा एवमुष्या स्पर्शा यथा हौवेयं लोभशेन चर्मणाऽपिहिता भवत्येवमेवासौ लोमशेन चर्मणा विहिता। लोमशेन हस्मपुरा वीणा अपिदधति।[20]

निष्कर्ष रूप में हम पाते हैं कि भारतीय संगीत का प्राचीनतम रूप वेद में उपलब्ध होता है। वैदिक आर्य प्रकृति के अति निकट सम्पर्क में रहते थे। उनके अधिकांश देवता उनकी सहज जिज्ञासा एवं सरल स्वभाव के ही परिणाम हैं। वेद में आर्यों में प्राकृतिक शक्तियां धीरे-धीरे देवताओं का रूप ग्रहण करती हुई दिखलाई पड़ती हैं। वैदिक आर्य जिस प्राकृतिक वातावरण में रहते थे, जिन प्राकृतिक घटनाओं को देखते थे और जिन प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग करते थे उन्हीं सबको वैदिक आर्यों ने अपना देवता स्वीकार किया। उन्हीं की स्तुति, वेद के सूक्तों में स्थान-स्थान पर उन्होंने की है। उनके द्वारा देखे गये प्राकृतिक तत्व सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, विद्युत, वर्षा आदि ही आगे चलकर सूर्य देवता, अग्नि देवता, मरुत देवता आदि बन गये। आगे चलकर देवताओं को भी उच्चशक्ति सम्पन्न मानवाकृति के रूप में देखा जाने लगा। इन देवताओं के साथ संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है, यथा- मरुत, शिव, रुद्र, उषस आदि। साथ ही प्रकृति वनस्पति, पशु-पक्षी आदि का भी संगीत (गायन, वादन, नृतन) के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिससे संबंधित चर्चा ऊपर अनेक स्थानों पर की गयी है। प्रकृति तथा मानव का अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है। संगीत, प्रकृति तथा मानव इन तीनों का परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। मानव की सत्ता, अस्तित्व को बनाये रखने में प्रकृति आधारभूत तत्व है। मानव के स्वार्थी होने के कारण ही आज प्रकृति संकटग्रस्त स्थिति में है, प्रकृति का यथोचित संरक्षण न होने से प्रकृति के महत्व को न समझने के कारण मानव जीवन आपदाग्रस्त हो रहा है। प्रकृति का संरक्षण मानव के हाथ में निहित है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन तीनों में किसी एक की हानि अन्य के लिए हानिकर है। संगीत एक साधना है। संगीत एक तप है। संगीत माध्यम है परम तत्व को प्राप्त करने का। संगीत एक अनुभूति है जिसकी प्राप्ति साधना प्रकृति की गोद में प्रकृति के शांतिमय वातावरण में ही संभव है। इसलिए यदि संगीत की सुरक्षा करना चाहते हैं तो हमें प्रकृति का संरक्षण करना होगा। प्रकृति का संरक्षण होने पर मानव का

सर्वतोभावेन संरक्षण स्वतः सिद्ध हो जाता है।

सन्दर्भ

1. काव्य और संगीत का परस्पर सम्बन्ध, पृ. 101, डॉ. उमा मिश्रा। **2.** भारतीय संगीत का इतिहास-श्री परांजये, पृ. 90. पुष्पसूत्र के इस भाष्य पर स्वामी प्रज्ञानंद कहते हैं एत्रैर्भावैश्व कोथुमाः from the above lines it is evident that different recessions (sakhas) of the Vedas used different numbers of note. Specially the kauthama recession used seen notes in two particular games. **3.** उच्चैरूदातः नीचैरनुदातः समाहारः स्वरितः, पाणिनी व्याकरण। **4.** तैत्तिरीय प्रतिशाख्य 23/13/14। **5.** यजुर्वेद 30/19। **6.** यजुर्वेद 30/20। **7.** अधि पेशांसि वपतेनृतुरिवापोर्णुते वक्ष उस्रे व वर्जहम्। ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न ब्रजं व्युषा आवर्तमः।। ऋग्वेद, मण्डल 1, सूक्त 92, सूत्र 4। **8.** दिवोवराहमरूपं कापार्दिन त्वेषं रूप नमसानियामेह (ऋग्वेद 1/1/1/114 स्रोत पृ. 5/5/222) इदं पित्रे मरूतामुच्यते यचः स्वादो स्वादीयो रुद्रायवर्धनम (ऋग्वेद 1/1/1/114 स्रोत 5/5 पृ. 222-223) उपते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वां पितर्मरूतां सुम्मननस्मे (ऋग्वेद 1/1/1/114 स्रोत 5/5/223-24) स्थिरेभिरंगै पुरूरूप उग्रो बभ्रुः शुकेभिः पिपिशेहिरण्येः। ईशा नादस्य भूवनस्य भूरेर्नवाऽयोष द्रुदासूर्यम् ।। 9।। (ऋग्वेद 1/2/7/33 स्रोत 5/5 पृ. 425-26)। **9.** को वो आनरोदिवश्वग्नश्च धूतयः। यत्सीमन्त न धूनुथ ।। ऋग्वेद 1/1/1/37 पृ. 91-92। **10.** मर्ताश्चिद्धो नृतवो रूकमवक्षंस उप भ्रातृ भातृत्त्वमायति। अधिनोगातमरूतः सदा हिव आपित्वमस्ति निधुवि ।। 22।। ऋग्वेद 3/6/1/3/20 पृ. 1180। **11.** यजुर्वेद, पूर्व अ. 30/19, पृ. 473-74। **12.** वैदिक संस्कृति तथा सभ्यता - डॉ. मुंशीराम शर्मा, पृ. 311। **13.** यजुर्वेद पू. अ. 30 स्तोत्र 20, पृ. 477-78। **14.** अर्थवेद 10/7/43। **15.** अंशूनिवग्रावाधिषवणे अप्रिगव्यं दुन्दुभेऽपि नृत्यवेदः - अथर्ववेद 5/20/10। **16.** अथर्ववेद 10/2/27। **17.** अथर्ववेद 1/58/10। **18.** तैतिरेय संहिता 6/1/4। **19.** शततंत्री 7/8/9 तथा 7/5/9 तुलनार्थ द्र. कात्या श्रौ. सू. 13/33-34। **20.** ऐतरेय आरण्यक 3/25।

एसोसिएट प्रोफेसर - नृत्य विभाग
वनस्थली विद्यापीठ (राज.)
मो. 9887562951

खुशहाली का रास्ता

एक दिन लुकमान से उसके बेटे ने पूछा– 'यदि मुझे मालिक मिल जावें और मांगने के लिए कहें तो क्या माँगू?'

लूकमान– 'लोक सेवा का धन।'

बेटा– 'अगर और माँगने को कहें तो ?'

लुकमान – 'हलाल की कौड़ी (पसीने की कमाई) माँगना।'

बेटा –'तीसरा?'

लुकमान – 'उदारता।'

बेटा –'चौथी?'

लुकमान – 'शरम।'

बेटा –'पाँचवीं ?'

लुकमान – 'अच्छा स्वभाव।'

बेटा – 'कुछ और माँगने को कहें तो ?'

लुकमान – 'और क्या माँगता ही जावेगा, जिसको ये पांचों चीजें मिल गईं, अब कुछ बचा नहीं। खुशहाली का यही रास्ता है।'

विश्व शांति और साहित्यकार का दायित्व

डॉ. अमरसिंह वधान

यह कहना बहुत सही है कि साहित्य जीवन की प्रतिकृति और समिष्टगत चेतना की उपज होने के कारण सभी धर्मों, मनुष्यों, भाषाओं, पशु-पक्षियों, प्रकृति और यहाँ तक कि जड़ वस्तुओं से भी प्रेम करना सिखाता है। अमरीकी कवि वाल्ट विटमैन 'लीब्ज़ ऑफ ग्रास' में कहते हैं, 'ईश्वर स्वयं कई भाषाओं एवं धर्मों में आत्माभिव्यक्ति करता है।' समाज के विभिन्न क्षेत्रों और परिस्थितियों में साहित्यकार के चेतन मन पर पड़े संस्कार अवचेतन मन में संगृहीत होते रहते हैं और समय पाकर अभिव्यक्ति पाते हैं। साहित्यकार में अनेकता में एकता स्थापित करने की जबर्दस्त ताकत होती है। समय साक्षी है कि व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, कबीर, होमर, दाँते, वर्जिल, शेक्सपीयर आदि ने करोड़ों हृदयों को जोड़ा। एक अन्य सच्चाई यह भी है कि साहित्य विश्व को सुन्दर एवं शांतिमय बनाने का सदैव पक्षधर रहा है। युद्ध, आतंकवाद, हिंसा, शोषण, अन्याय एवं गरीबी के विरुद्ध साहित्य ने डटकर मोर्चा लिया है। मूल्यवत्ता की दृष्टि से देखें तो साहित्य में ईसा मसीह की मानवीयता है तो कृष्ण का सौन्दर्य-बोध भी है; राम की मर्यादा है तो बुद्ध की करुणा भी है; टैगोर का भक्ति भाव है तो निराला की संघर्ष चेतना भी है। कहने का प्रयोजन यह है कि साहित्य ने सदैव विश्व सभ्यता, विश्व संस्कृति, विश्व शांति और विश्व एकता के द्वार ही खोले हैं।

मनोवैज्ञानिक कोण से देखें तो मनुष्य की चिरप्रतीक्षित आकांक्षा 'शांति' ही है, जो न केवल उसके अस्तित्व, विकास एवं प्रगति के लिए आवश्यक है, बल्कि परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के अमनपूर्ण उन्नयन के लिए लाजमी भी है। जिस तरह युद्ध, आतंकवाद, दंगे-फसाद आदि मानव मस्तिष्क की उपज हैं, शांति भी उसी मानव मस्तिष्क से ही जन्म लेती है। यह छनकर आया सत्य है कि हिंसा के प्रति प्रतिबद्धता, आणविक सर्वनाश, घनी मारकाट, मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का भारी अपव्यय, विषमतावादी अर्थव्यवस्था, मानवाधिकारों का उल्लंघन, हिंसक प्रतिशोध, हिंसा प्रधान विज्ञान और प्रौद्योगिकी, विप्लव, युद्ध आदि को तो जन्म दे सकती है, लेकिन विश्व शांति को कदापि नहीं। भारतीय इतिहास के एक सुदूर पन्ने से साक्ष्य मिलता है कि कलिंग युद्ध से होने वाली विपत्तियों को देखकर जो पश्चाताप अशोक को हुआ, उस पश्चाताप की भाषा अशोक को छोड़कर और किसी को

नहीं आ सकती। हृदय परिवर्तन एवं बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेने के बाद उनके एक धर्म लेख की भाषा कुछ इस तरह है, 'पहले जहाँ युद्ध मेरी अर्थात् लड़ाई के नगाड़ों का शब्द होता था, वहाँ अब धर्म अर्थात् धार्मिक उत्सवों में बजने वाले नगाड़ों का शब्द सुनाई पड़ता है। जहाँ पहले सेनाओं का जुलूस निकलता था, वहीं अब धर्म संबंधी जुलूस निकलते हैं।' यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पाँचवी शताब्दी में चीनी यात्री फाह्यान अपने भारत वर्णन में इसी तरह के एक धार्मिक जुलूस का हाल लिखा है, जिसे उसने पाटलिपुत्र में देखा था। कहना न होगा कि अशोक के धर्म लेख, स्तंभों, शिलाओं पर अंकित उपदेश शांति और अहिंसा के दुर्लभ साहित्यिक दस्तावेज हैं। दिलचस्प है कि जिस मस्तिष्क से हिंसा, युद्ध और अशांति जन्म लेती रही, उसी मस्तिष्क से मानव-जाति की सुरक्षा एवं विश्व शांति को उत्पन्न होने में देर नहीं लगी।

इसमें कोई शक नहीं कि युद्ध एक अभिशाप है, बर्बरता है, बुराई है, पीड़ा है, व्यथा और विषाद है। इसकी क्रूरता और तुच्छता शांति की घोर शत्रु है। युद्ध न तो किसी समस्या का समाधान है और न ही सामाजिक संतुलन एवं राष्ट्रीय भावना को प्रबुद्ध करने का ज़रिया। ऐतिहासिक सूचना है कि रोहिणी नदी शाक्य राज्य और कोलियों के राज्य के दरमियान विभाजक रेखा का काम करती थी। एक बार रोहिणी के जल को लेकर दोनों राज्यों को बीच झगड़े के कारण स्थिति युद्ध के कगार पर पहुँच गई। शाक्य सेनापति और 28 वर्ष के राजकुमार सिद्धार्थ के बीच मतभेद पैदा हो गया। सेनापति युद्ध के लिए तैयार था, लेकिन सिद्धार्थ युद्ध नहीं चाहते थे। अंत में सिद्धार्थ ने अपने तर्कों-दलीलों से युद्ध रोक दिया, अंततः उन्होंने परिव्राजक का जीवन व्यतीत करने का निर्णय ले लिया था। इस घटना ने सर एडविन आरनोल्ड को इतना प्रभावित-प्रेरित किया कि उन्होंने बुद्ध को शांति और अहिंसा का परम पुजारी घोषित करते हुए 'लाइट ऑफ एशिया' (1874) शीर्षक से उनकी जीवन-कथा को काव्यबद्ध कर दिया। कहना न होगा कि साहित्यकार द्वन्द्व और संघर्ष की स्थिति को समझाने तथा इससे जूझने की शक्ति से लोगों का परिचय करवाता है, जिससे राष्ट्रीय भावना एवं अमन-चैन का सुदृढ़ धरातल बनता है। दिनकर की 'परशुराम की प्रतीक्षा' में अभिव्यक्त चुनौती विचार के धरातल पर जितनी सत्य है, उतनी ही कर्म के धरातल पर खरी है।

प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) के बाद की दुनिया प्रतीकात्मक अर्थ में टी. एस. इलियट को 'बंजर भूमि' (द वेस्ट लैंड) लगती है। उनकी दृष्टि में यह 'बंजरपन', दरअसल, पश्चिमी मानव की भावात्मक एवं आध्यात्मिक बाँझपन, शून्यता, निष्फलता और सभ्यता का ऊसरपन है। यहाँ कवि विश्वासों और अविश्वासों, संस्कृति और जीवन की स्थितियों को अतीत से जोड़कर देखता है। 'द वेस्ट लैंड' (1922) कविता का मूल स्वर इस ऊसर सभ्यता की मुक्ति है, सुरक्षा है और है इसका बचाव भी। कवि को सुनिश्चित नहीं तो संभव अवश्य लगता है कि भावात्मक, आध्यात्मिक एवं बौद्धिक तेजस्विता को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। विषय का प्रतिपादन प्रकृति, मिथक एवं धर्म से संबद्ध प्रतिमानों, ऋतु-चक्र, भारत और यूनान के प्राचीन उर्वर मिथकीय संदर्भों, जिनमें देवता या धर्मपुत्र को पुनर्जीवित होने के लिए मरना जरूरी है, में से गुजरता है। आश्चर्य है कि 433 पंक्तियों की इस लंबी कविता की अंतिम पंक्ति में कवि उपनिषद् की ओर मुड़ते हुए 'शांति शांति शांति' पुकार उठता है। कवि को मालूम है कि रक्तपात एवं विध्वंस अशांति, भय और असुरक्षा पैदा करते हैं। भावात्मकता और आध्यात्मिकता के जरिए ही विश्व में शांति की हरीतिमा लाई जा सकती है।

परिवेश के बेरहमीपन में मनुष्य के 'होने' की अनिश्चितता और सिमसिमाते असंतोष ने श्री

अरविन्द जैसे संवेदनशील साहित्यकार को भी झकझोरा था। उन्हें मूल्यों की पारंपरिक व्यवस्था के विनाश पर गहरा दुःख है। एक कवि एवं दार्शनिक के रूप में उनकी मान्यता है कि साहित्यकार समाज के साथ अपने संबंधों एवं अपेक्षित भूमिका से पलायन नहीं कर सकता है। वे साहित्य को जीवन का आईना तथा जीवन के सार तत्त्वों से आसवित मानते हैं। उन्होंने अपनी कल्पना और सर्जनात्मक विषय-निवेशों से युग-बोध को वाणी दी है। उनकी कविताओं में जहाँ-जहाँ एक स्तब्ध, मोहमंग एवं उत्सुक मन के संदर्भ हैं, वहाँ-वहाँ शान्ति की पुकार भी ध्वनित है। ए. ई. हाउसमैन कविता को साहित्य का एक शक्तिशाली औज़ार मानते हैं। सामाजिक ज़्यादतियों, दबावों एवं हिंसात्मक गतिविधियों की तीव्र वेदना उनकी काव्य रचनाओं में उभर कर आई है। मनुष्य की चीख, विषाद और 'न होने' का बोध पकड़ती हुई उनकी कविताएँ शांति की खोज में संलग्न होती हैं। अफ्रीकन कवयित्री सोनिया संचेज़ 'राइट ऑन : व्हाइट अमेरिका' कविता में विश्व शांति की पुकार करती हुई कहती है, 'हमारे उज्ज्वल भविष्य को अंधकार में बदलने से पहले गोलाबारी और बंदूकों के भयावह संगीत को बंद करो। श्याम वर्ण होती हुई भी मैं अमेरिका की शुभ चिंतक हूँ।' लेंगस्टन ह्यूग की रचनाएँ विश्व को मैत्री एवं समस्वरता की भूमि बनाने के पक्ष में हैं। इनमें अशांति एवं अत्याचार के विरुद्ध भावात्मक संघर्ष, शांति एवं आशावाद व्यंजित है।

चार खंडों तथा डेढ़ हज़ार पृष्ठों में समाया लियो तोल्स्तोय का 'युद्ध और शांति' उपन्यास 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भू-दासों की मुक्ति के पहले के रूस का एक जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार ने इतिहास के प्रति अपने व्यापक दृष्टिकोण को स्पष्ट करना चाहा है कि युद्ध का सारे समाज, जीवन के सभी पक्षों, सभी वर्गों और श्रेणियों में लोगों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उपन्यास में जहाँ वीरता, आत्मरक्षा, देशरक्षा के लिए न्यौछावर होने वाले वीरों का कीर्तिगान है, वहीं युद्ध के भयानक परिणामों, व्यक्तियों और समाज के जीवन की नींव हिला देने वाले टकरावों के विरुद्ध शांति का प्रबल आह्वान भी है। तोल्स्तोय ने युद्ध को सबसे घृणित, संहारक और पाशविक प्रवृत्ति ठहराकर इसका विरोध किया था और मानव जाति की सुरक्षा एवं विकास के लिए शांति, प्रेम, करुणा और ममता को अनिवार्य माना। उल्लेखनीय है कि समरसैट मॉम ने इस उपन्यास के महत्व को बताते हुए लिखा है, 'संसार का सबसे बड़ा उपन्यासकार बाल्ज़ाक था, किन्तु 'युद्ध और शांति' संसार का सबसे महान उपन्यास है।' हैरत नहीं कि इस उपन्यास ने तोल्स्तोय की शक्ति को निचोड़ डाला था और इसी कारण लगभग एक साल तक वह खेतों और बाग में काम करके अपने मस्तिष्क को आराम देते रहे। प्रसंगवश, महाभारत युद्ध के संदर्भ में गीता के इस उपदेश 'तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय' को स्वीकार करना परमधर्म हो सकता है। लेकिन इस युद्ध से यह प्रश्न शत-प्रतिशत रूप से निर्णीत नहीं हो पाता कि कौन धर्मारूढ़ सत्पक्ष का समर्थक है और कौन अधर्माचरण करके युद्ध को निमंत्रण दे रहा है। लेकिन शांति स्थापना के सभी प्रयास आतिशबाजी की मानिंद विखंडित हो जाते हैं।

यह तथ्य निराधार नहीं है कि विश्व साहित्य में शांति की अपील समान रूप से पाई जाती है, भले ही अभिव्यक्ति एवं अभिव्यंजना अलग-अलग रूपों में हुई हो। विलियम ब्लैक की कविताओं 'सांगज ऑफ इनोसेन्स' एवं 'सांगज ऑफ एक्सपीरियन्स' में टाइगर (बाघ) तथा लै. (मेमना) प्रतीकात्मक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। बाघ आतंक, निर्दयीपन एवं हृदयहीनता का प्रतीक है और मेमना निर्दोषता, अबोधता एवं शांति का। कवि के अनुसार संसार रेत में एक अनाज का

दाना है। हृदयहीन और सहृदयी के मध्य इस दाने को प्राप्त करने का संघर्ष चलता रहता है। लेकिन कवि समन्वय, सुमेल, मेल-मिलाप, शांति, करुणा, दया, सहानुभूति और प्रेम का संदेश देने में कहीं भी चूकता नहीं। रवीन्दनाथ टैगोर भी परिवेश की ज्यामिति से दुखी होकर 'गीतांजलि' में संगृहीत 'वन्दना' शीर्षक गीत में ईश्वर से शांति की भीख माँगते हैं, 'मैं तुझसे चरमशांति की भीख माँगने आया हूँ।' रोमा रोला स्वामी विवेकानंद और महात्मा गाँधी से बहुत प्रभावित थे। उनके सर्वोत्कृष्ट उपन्यास 'ज्याँ क्रिस्तोफ' में ओलिवर फ्रॉन्स की आध्यात्मिक भावनाओं का प्रतीक है। इस उपन्यास का नायक एक संगीतज्ञ है जो अपने साथियों के साथ मिलकर शांति, मानव प्रेम तथा सद्भाव का प्रचार-प्रसार करता है। यहाँ याद कराना ज़रूरी है कि सन् 1909 ई. में गाँधी ने 'हिन्द स्वराज' में पाश्चात्य की कोख से जन्मी आधुनिक सभ्यता को 'एक रोग' तथा 'तीन दिन का तमाशा' बताया था, क्योंकि 'यह सभ्यता न तो धर्म का विचार करती है और न आचार पर ही ध्यान देती है।' उनकी राय में सभ्यताओं के विकास के लिए भौतिक पवित्रता और आत्मशक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। गाँधी संसार के इतिहास में अहिंसा, शांति और मानव प्रेम के सबसे बड़े शिक्षक और प्रचारक हैं। उनका सर्वोदय तत्त्व दर्शन तो दार्शनिक और व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में संसार को भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ मौलिक देन है। गोखले ने सन् 1909 ई. में सही कहा था, 'गाँधी से अधिक वीर, शुद्ध आत्मा एवं शांतिप्रिय व्यक्ति इस संसार में कभी नहीं हुआ। आज दहशत भरे जलजलों एवं अस्तित्ववादी क्रूर स्थितियों ने मनुष्य को 'होने' और 'न होने' के द्वन्द्व में जकड़ रखा है। नैतिकता का ह्रास इधर की त्वचा प्रदर्शन संस्कृति का अनुपूरक है। समाज में कमियों और विसंगतियाँ तो पहले भी थीं। लेकिन ईसा, बुद्ध, महावीर, गुरुनानक आदि विभूतियों ने सदियों पहले समाज को अधिक नैतिकताशील, शांतिप्रिय, न्यायप्रिय एवं समता प्रधान बनाने के शाश्वत प्रयास किए थे। इन्होंने जिन मानव-मूल्यों की आवाज़ बुलंद की थी, वह विश्व की हर भाषा के भक्ति साहित्य का केन्द्रीय विचार बनी। इस संदर्भ में जाफरे चौसर, विलियम ब्लेक, डब्ल्यू. बी. यीट्स, एमर्सन, थोरो, वाल्ट विट्मैन की कृतियों एवं भारतीय भाषाओं में रचित भक्ति साहित्य की रचनाओं को देखा जा सकता है।

विश्व साहित्य में साहित्यकारों का एक ऐसा भी वर्ग रहा है जिसने विश्व शांति की स्थापना, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विश्व-बंधुत्व एवं मानव प्रेम के लिए हर मोर्चे पर जाना अपना लेखकीय दायित्व समझा। अमरीकी उपन्यासकार अर्नेस्ट हेमिंग्वे ने युद्ध की विनाश लीला का अनुभव लेने के बाद अपने उपन्यासों में शांति, संघर्ष एवं सद्भावना के स्वर उकेरे थे। रूपर्ट ब्रुक, जूलियन ग्रेनफेल और सर ऑसबर्ट सिटवेल की कतिपय काव्य रचनाएँ मानवीय गरिमा एवं सार्वभौम सुचारु जीवन की अपील करती हैं। चार्ल्स हेमिल्टन सोर्ले, सिग्फाइड सेसून, विलफ्रेड ओवेन, आइज़क रोज़नबर्ग और डेविड जोन्स की कविताओं का मूल स्वर शांति, सुख और मानव जाति के अस्तित्व का सुरक्षण ही है। उल्लेखनीय है कि चार्ल्स हेमिल्टन सोर्ले की युद्ध में मृत्यु के बाद फ्रांस से भेजी गई उसकी किट में से लिखा एक शोक गीत मिला, जिसका भाव है- 'मृतक सिपाहियों की बंद आँखें तुम्हारे बहते आँसुओं को नहीं देख सकतीं और न ही उस प्रदत्त सम्मान को, मरना भी कितना आसान है।' सोर्ले ने सच्चे अर्थों में मानवीय संकट का गहरा अर्थ खोजा-समझा था और निष्कर्षित किया था कि अपने सुख-स्वतंत्र की तलाश में हमें दूसरों के सुख एवं स्वतंत्र जीवन पर भी ध्यान देना चाहिए, तभी सरहदों के आर-पार की शत्रुता को समाप्त किया जा सकता है। दुश्मनी युद्ध

की जननी है, शांति वैश्विक भाईचारे की निर्मात्री है। फ्रांस के बहुचर्चित प्रतीकवादी कवि लॉरेन्ट टेलहेड के काव्य का प्रधान स्वर है- 'शांति ही मानव का धर्म है।' वह विश्व के राष्ट्रों में अधिक सहानुभूतिपूर्ण सहकारी भावना पर बल देते हैं। उनका मानना है कि लोभ तथा ईर्ष्या द्वारा प्रभावित लोगों के लिए शांति से रहना असंभव है। समस्या का अस्थायी समाधान समस्या का स्थायी निराकरण नहीं है।

इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 20वीं सदी सभ्यता की तीव्र प्रगति की सदी थी। यह युद्धों, नर-वध एवं हत्याकाण्डों की सदी भी रही। इस सदी में न तो विश्व शांति के लिए लोगों में तीव्र उत्कंठा जाग्रत हुई और न ही राष्ट्रसंघ, संयुक्त राष्ट्र संघ, पंचशील एवं अन्य शान्ति सम्मेलन कोई सफल प्रयास कर सके। विज्ञान भी स्थायी विश्व शांति को स्थापित करने में विफल रहा है। विज्ञान ने तो उन मानवीय मूल्यों की भी उपेक्षा की, जो इस धरती पर एक-दूसरे को पारिवारिक संबंध से जोड़ते हैं। अपने जीवन के अंतिम दिनों में अल्बर्ट आइंस्टीन को विज्ञान की गलतियों का अहसास हो गया था और वे गाँधी के प्रशंसक बन गए थे और मानव जाति के कल्याण तथा शांति स्थापना संबंधी उनसे पत्र-व्यवहार भी करते रहे। लेकिन यह संयोग की बात है कि आज के वैज्ञानिकों ने अपनी सोच को विश्व शांति की ओर मोड़ा है। मिसाल के तौर पर जापान के वैज्ञानिक, पर्यावरणविद् एवं कवि काजुयोशी ईकदा ने अपने 20 काव्य- संग्रहों में विश्व-बन्धुत्व, विश्व शांति, मानवीय सुख एवं मानव-प्रेम की बार-बार बात कही है। उनकी 'पॉइम्स ऑन लव एण्ड पीस' संग्रह की कविताएँ वैश्विक भाईचारा, शांति एवं बौद्ध दर्शन की अभिव्यक्ति हैं। उनकी 'ए फिशिंग रॉड' कविता संघर्षविहीन एवं शांतिमय विश्व को व्यक्त करती है। ईकदा काव्य का केन्द्रीय स्वर मानवता है और इसकी वैश्विक अपील विश्व शांति, विश्व समन्वय एवं विश्व बंधुत्व है।

यह चमकीला सत्य है कि गत तीन दशकों से विश्व स्तर पर सक्रिय आतंकवादी गतिविधियों ने सभी राजनीतिक, प्रशासनिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक समीकरणों को विफल कर मनुष्य, समाज, देश एवं विश्व की सुरक्षा एवं शांति के सम्मुख कई कड़ी चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। आतंकवाद वस्तुतः निम्नपूँजीवादी या मध्यवर्गीय क्रान्तिकारी प्रवृत्ति है जो क्रान्तियों की पराजय की कोख से ही जन्म लेती है। प्रत्यक्ष उत्पादन से कटा हुआ यह वर्ग प्रकृति से ही अव्यावहारिक, जल्दबाज और उद्विग्नतापूर्ण होता है। आतंकवादी भटकाव को भलीभाँति समझना, उसके विरुद्ध विचारधारात्मक संघर्ष चलाना और नए सिरे से जनक्रान्ति की तैयारी करना आज के दौर का अनिवार्यतः कार्यभार है। इस दिशा में अपनी निर्भीक एवं सक्रिय भूमिका व दायित्व निर्वहन से साहित्यकार पलायन नहीं कर सकता है। तभी तो एक ज़िम्मेदार कवि के रूप में प्रसून जोशी 26 नवंबर, 2008 को मुंबई पर हुए आंतकवादी हमलों के विरुद्ध भारतीयों को सचेत करते हुए कह ही देते हैं- 'कहीं तो शुरुआत करनी होगी, इस बार यही तय किया है।' इस सच्चाई से किसी को मानसिक छीलन हो सकती है कि भारतीय साहित्य में ही नहीं, बल्कि विश्व साहित्य में भी आतंकवाद के विरुद्ध साहित्यकारों की कलमें तकरीबन मौन ही रही हैं, सस्ती एवं विवादास्पद लोकप्रियता की खातिर धार्मिक वर्जनाओं पर प्रहार अवश्य किए गए हैं। यूँ तो युद्धों, क्रान्तियों और विद्रोहों के संदर्भ-प्रसंगों तथा परिणाम-प्रभावों को काव्य, उपन्यास आदि विधाओं में प्रचुर मात्रा में उकेरा गया है लेकिन आतंकवाद को केन्द्र में रखकर कोई कालजयी कृति अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। प्रसंगवश टोर ब्जोर्गो द्वारा संपादित 257 पृष्ठों की पुस्तक 'रूट कॉजेज ऑफ टेररिज्म' (2005) में

लेखकारों ने वैश्विक स्तर पर आतंकवाद के इतिहास-भूगोल का विश्वसनीय विवेचन-मूल्यांकन किया है। पुस्तक का निष्कर्ष है कि यदि किसी इलाके के लोग मच्छरों से पीड़ित हैं तो पहले उन गंदी नालियों को साफ करना चाहिए जहाँ वे पैदा होते हैं, बजाय इसके कि सभी मच्छरों को एक-एक करके मारने का प्रयास किया जाए।

प्रेम तथा करुणा विश्व-शांति के नैतिक अंश एवं आधार स्तंभ हैं। चाहे किसी का धर्म में विश्वास हो या नहीं, परन्तु कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो प्रेम तथा करुणा को अनादर की दृष्टि से देखे। फिर साहित्यकार की संवदेनशीलता में सभी मानव-मूल्यों की आर्द्रता विद्यमान रहती है। वह तो सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक सहृदय, शांतिप्रिय एवं संवदेनशील प्राणी होता है। व्यक्ति और समाज के सुख-दुःख की सबसे गहरी और व्यापक प्रतिक्रिया उसी के अंदर होती है। इसलिए साहित्यकार का यह स्वाभाविक दायित्व एवं धर्म होता है कि वह अपने देश और काल की ठीक-ठीक परिस्थितियों का निर्भीकता से चित्रण करे। आज विश्व को अमानवीय एवं दहशतभरी गतिविधियों, हिंसा, अन्याय, दबावों तथा प्रभावों का शिकार होना पड़ रहा है। साहित्यकार यदि इन सब खौफनाक दृश्यों एवं घटनाओं की उपेक्षा करता है तो वह राष्ट्रीय और मानवतावादी जीवन से कोसों दूर है। वह राष्ट्र, जनता एवं साहित्य के प्रति विश्वासघात करता है। 'काव्यप्रकाश' में काव्य के लक्षण गिनाते समय काव्यप्रकाशकार ने 'शिवेतर-क्षतये' को भी प्रतिपादित किया है। अशिव की क्षति, साहित्य का बड़ा पुनीत अनुष्ठान है। अतः अशिव की क्षति करने तथा विश्व शांति को स्थापित करने में साहित्यकार को सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

3150, सेक्टर 24-डी चंडीगढ़-160023
मो. 9876301085

●

आत्मसाक्षात्कार

स्वामी रामतीर्थ जापान-यात्रा पर थे। उन्होंने वहाँ देवदार और चीड़ के तीन-तीन सौ, चार-चार सौ वर्ष के पुराने बौने पेड़ देखे, जो केवल एक-एक बालिस्त के या उससे थोड़े बड़े थे। वे आश्चर्य में भरकर पूछ बैठे– इसका रहस्य।

वहाँ के एक अनुभवी व्यक्ति ने बताया कि हम इन वृक्षों की डालियों या इनके पत्तों को नहीं छूते, केवल जड़ें काटते रहते हैं– इन्हें नीचे दूर तक नहीं जाते देते। जो पेड़ नीचे दूर तक जड़ों से नहीं जाएगा, वह बौना रह जाएगा।

यह सुनकर स्वामी रामतीर्थ जीवन विकास को आध्यात्मिक आत्म-साक्षात्कार कहकर गुनगुनाते हैं-

'जो ऊपर उठना चाहते हैं, दुनिया में फलना-फूलना चाहते हैं, उन्हें नीचे अर्थात् अपनी अंतरात्मा में जड़ें बढ़ानी चाहिए। अंदर यदि जड़ें न बढ़ेंगी तो वृक्ष ऊपर भी न फैलेगा।'

आत्मा में गहराई से उतरना, अपने से मिलना है। यही ध्यान है। यही आत्मसाक्षात्कार है।

बांसुरी में जितनी सांस नीचे उतरती है, उतना ही शब्द ऊँचा होता है।

रागदरबारी : समीक्षा के कोण

डॉ.प्रीति राय

शोध सार - श्रीलाल शुक्ल द्वारा रचित उपन्यास 'राग दरबारी' भारतीय सामाजिक-राजनैतिक ढांचे का यथार्थ चित्रण है, जो आजादी के बाद के भारत की विडंबनाओं, अंतर्विरोधों और व्यवस्था की विफलताओं को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास लोकतंत्र के नाम पर संचालित उस तंत्र की परतें खोलता है जिसमें शिक्षा, कानून, राजनीति और प्रशासन सभी क्षेत्र भ्रष्टाचार, अवसरवाद और सामंती प्रवृत्तियों से ग्रस्त है। उपन्यास शिवपालगंज नामक काल्पनिक कस्बे के माध्यम से संपूर्ण भारतीय ग्रामीण समाज का प्रतिनिधित्व करता है और यह दिखाता है कि किस तरह आदर्शवाद यथार्थ के सामने धीरे-धीरे हार मान लेता है। 'राग दरबारी' की मूल चेतना भारत की आज़ादी और उससे जुड़ी हुई जन आकांक्षाओं की टूटन से उपजती है। उपन्यास में मौजूद हर चरित्र व्यवस्था की सड़न का उदाहरण है, चाहे वह शिक्षा संस्थान हो, प्रशासनिक तंत्र या स्थानीय राजनीति। इसके साथ ही यह उपन्यास व्यंग्य को एक गंभीर सामाजिक टिप्पणी में बदल देता है। आलोचकों ने उपन्यास को लेकर विविध दृष्टिकोण अपनाए - कुछ ने इसे नकारात्मक कहा तो कुछ ने इसे यथार्थवादी उत्कृष्ट रचना के रूप में मूल्यांकित किया। कई समकालीन आलोचकों ने इसे हिंदी साहित्य की क्लासिक कृति माना है जो भारतीय समाज के अंतर्विरोधों को उजागर करती है। राग दरबारी सिर्फ एक उपन्यास नहीं, बल्कि यह एक कालखंड की नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक परतों का विश्लेषण है, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना इसके लेखन के समय था। **बीज शब्द -** लोकतन्त्र, राजनीति, मूल्यांकन, प्रशासक, व्यंग्यात्मक।

मूल आलेख - राग दरबारी हिन्दी साहित्य का एक प्रतिनिधि उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1968 ई. में हुआ। यह उपन्यास स्वतंत्र भारत के सामाजिक-राजनैतिक ढांचे का प्रतिनिधि चरित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। स्वतंत्र भारत की सामाजिक-राजनैतिक संरचना जिस रूप में विकसित हुई उसका मूल्यांकन करते हुये यह उपन्यास उसके आपसी अंतर्विरोधों को भी बखूबी दर्ज करता है। इसका प्रकाशन हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक बड़ी घटना से कम नहीं है। जिस वर्ष यह उपन्यास प्रकाशित हुआ और जिन वर्षों में इसकी रचना-प्रक्रिया चल रही थी वे भारतीय राजनीति के लिहाज में बहुत महत्वपूर्ण वर्ष हैं। यूं इस उपन्यास का प्रकाशन

भले नेहरू युग के बाद हुआ लेकिन इसकी घटनाएँ और इसकी रचना-प्रक्रिया में नेहरू युग के संदर्भ बेहद महत्वपूर्ण हैं। इस उपन्यास के लेखक श्रीलाल शुक्ल खुद पेशे से उत्तर प्रदेश की प्रशासकीय सेवा में कार्यरत थे। उपन्यास में दर्ज की गयी घटनाओं में एक प्रशासक की नजर बहुत स्पष्ट तौर से रेखांकित की जा सकती है। किसी भी रचना पर उसके रचनाकार के मनोजगत और कार्यक्षेत्र का गहरा असर पड़ता है। रचना में अनुभव सत्य के साथ अनुभूत सत्य की भी महत्ता समान रूप से महसूस की जाती है। जीवन का ऐसा क्षेत्र जहां एक इंसान के रूप में हमारी उपस्थिति न हो, उस क्षेत्र का हमारी रचना में प्रामाणिकता के साथ दर्ज हो पाना मुश्किल होता है। यह बेवजह नहीं है कि जब विमर्शवादी मूल्यों की चेतना साहित्य में विकसित हुई तो लंबे समय तक अनुभवगत सत्य और अनुभूतिगत सत्य की बहस चली। यह बहस ही इस बात की प्रामाणिकता के लिए पर्याप्त है। इसका हासिल भले ही कुछ न रहा हो लेकिन इस बहस का अपने आप में पर्याप्त मूल्य है।

राग दरबारी उपन्यास अपनी संरचना और शिल्प दोनों में हिन्दी में एकदम भिन्न रंग का उपन्यास है। आलोचना पत्रिका के आयोजन 'भारतीय जनतंत्र का जायजा" में बोलते हुये डॉ. नामवर सिंह ने कहा है कि रचना में कंटेन्ट और फार्म दोनों जरूरी होते हैं। फार्म उसका बाह्य पक्ष है कंटेन्ट भीतरी। फार्म के स्तर पर हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद का 'गोदान' भी उपन्यास है, अज्ञेय का 'शेखर : एक जीवनी' भी उपन्यास है, हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' भी उपन्यास है, रेणु का 'मैला आँचल' भी उपन्यास है, यशपाल का 'झूठा सच' भी उपन्यास है, श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' भी उपन्यास है, विनोद कुमार शुक्ल का 'नौकर की कमीज' भी उपन्यास है और रेलवे स्टेशनों पर बिकने वाले लुगदी साहित्य भी उपन्यास हैं। लेकिन जब कंटेन्ट की बात आती है तो सबका अपना अलग-अलग मूल्य तय हो जाता है। कंटेन्ट के स्तर पर जो महत्व 'गोदान' का है वही 'मैला आंचल' या 'झूठा सच' का नहीं है, जो स्थान 'राग दरबारी' का है वही स्थान स्टेशन पर बिकने वाले किसी उपन्यास का नहीं हो सकता। नामवर जी की उक्त बात का संदर्भ लेते हुये हम कहना चाहते हैं कि राग दरबारी कंटेन्ट के स्तर पर गोदान, बाणभट्ट की आत्मकथा, मैला आंचल और झूठा सच की परंपरा का उपन्यास है। इसका कंटेन्ट हिन्दी की जातीय कथा परंपरा से जुड़कर आगे बढ़ता है। यही नहीं यह उपन्यास जिस समय में लिखा गया वह समय भी कई दृष्टियों से बेहद महत्वपूर्ण है। सौ वर्षों की आजादी की लड़ाई के बाद जो देश आजाद हुआ उसके समक्ष कई गंभीर चुनौतियाँ थीं जिनसे निकलकर ही इसे लोकतंत्र के रास्ते पर आगे बढ़ना था। आजादी की लड़ाई लड़ने वाली जनता का सपना था एक स्वस्थ, समृद्ध और खुशहाल भारत की स्थापना। आजादी की लड़ाई लड़ने वालों के लिए आजादी के क्या मायने और क्या मतलब थे इसे उस दौरान लिखी गयी तमाम कविताओं में देखा जा सकता है। भारत को आजाद देखने की चाह ही थी कि स्वतन्त्रता सेनानियों ने स्वतंत्रता के गीत गाते हुये फांसी के फंदे को भी चूम लिया। जो आजादी हमें मिली उसकी कड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी। वह यूं ही नहीं मिल गयी थी। हजारों लाखों सेनानियों के बलिदान के मूल्य पर मिली आजादी कैसी थी इसे फैज़ अहमद फैज़ ने एक नज़्म में बहुत बेहतर ढंग से व्यक्त किया है। फैज़ साहब लिखते हैं - *'ये दाग दाह उजाला, ये सबगजीदा शहर। था इंतजार जिसका ये वो शहर तो नहीं। ये वो सहर तो नहीं जिस की आरजू लेकर, चले थे यार की मिल जायेगी कहीं न कहीं, फलक के दस्त में तारों की आखरी मंजिल, कहीं तो होगा शब-ए-सुस्त मौज का साहिल "* आखिर ऐसी कौन सी आज़ादी मिली जिसकी इतनी आलोचना हो रही थी? हिन्दी कविता में

नागार्जुन, दुष्यंत कुमार से लेकर धूमिल और राजकमल चौधरी तक सभी कवि एक सुर में आज़ादी को कोसते हुये नजर आ रहे थे। दुष्यंत कुमार ने तो स्पष्ट तौर पर कहा - *'कहाँ तो तय था चरागाँ हर एक घर के लिये, कहाँ चराग मयस्सर नहीं शहर के लिये।'*[3]

ये जो तय किए गए चराग का मयस्सर न होना है, यह आखिर क्या है? तो इसे समझने के लिए किसी अतिरिक्त बौद्धिक परिश्रम की जरूरत नहीं है। इसे समझने के लिए हमें 1947 से पहले के भारत की तरफ लौटना होगा। वहाँ जाने पर हम यह देख पाएंगे कि आजादी कि लड़ाई के समय के जो मूल्य थे, जो सपने थे, जो जन आकांक्षाएँ थी उनके आधार पर भारत को आजादी नहीं मिली। भारत को मिलने वाली आज़ादी एक तरह का कांट्रैक्ट साबित हुई। यह एक समझौते के तहत भारतीय उपमहाद्वीप को दो मुल्कों में बांटकर राजनैतिक सत्ता का हस्तांतरण मात्र साबित हुई। आज़ादी की लड़ाई के दौरान के जो संवेदनशील रचनाकार थे जो सजग जन बुद्धिजीवी थे जो महात्मा गांधी कि तरह सोचने समझने वाले लोग थे उनके लिए इस आजादी का कोई बहुत बड़ा मूल्य हो ऐसा एकदम नहीं था। बल्कि गांधी तो इस आजादी से निराश थे। जिस समय पूरा देश आज़ादी की खुशियाँ मना रहा था उस समय महात्मा गांधी कलकत्ता में हिन्दू-मुस्लिम के बीच हुये सांप्रदायिक दंगे को सुलझा रहे थे। देश कि राजधानी में होने वाले उत्सव की बजाय वे सुदूर दक्षिण में लोगों को सन्मार्ग पर चलने की सलाह दे रहे थे। जिन स्थितियों में देश को आजादी मिली वह एक भयावह स्थिति थी। यही कारण है कि दुष्यंत जैसे कवियों ने लिखा कि जो तय हुआ था उसके मुकाबले जो मिला वह कुछ भी नहीं है। दुष्यंत कहते-कहते यहाँ तक कह जाते हैं-*'यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है, चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिये।'*[4] सरसरी तौर पर इसे पढ़ते हुये लग सकता है कि यहाँ तो पलायन की बू आ रही है। लेकिन उस रचनाकार की मनोवृत्ति को समझने की कोशिश की जाय तो समझ में आता है कि यहाँ पलायन नहीं है बल्कि एक उम्मीद के टूटने का संत्रास है, एक पीड़ा है। यह पीड़ा आम भारतीय की पीड़ा है। अगर हम इस पीड़ा को नहीं समझना चाहते या नहीं समझते तो हम राग दरबारी के मूल मन्तव्य को भी नहीं समझ सकते।

राग दरबारी उपन्यास की मूल चेतना भारत की आज़ादी से जुड़ी हुई है। आज़ाद भारत की सामाजिक-राजनैतिक संरचना कि निर्मिति आजादी की ही नींव पर हुई है। आजादी के जो मूल्य और परिस्थितियाँ थीं उन्हीं का असर था कि राग दरबारी जैसा उपन्यास लिखा जा सका। राग दरबारी उपन्यास पर बात करते हुये सबसे पहले ध्यान इस बात पर जाता है कि इसका नाम राग दरबारी ही क्यों रखा गया। किसी भी कृति का नाम उसके मूल मन्तव्य को व्यक्त करने वाला होता है। उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने राग दरबारी नाम रखते हुये क्या सोचा होगा, या क्या सोचकर उन्होंने इसका नाम राग दरबारी रखा, यह बार-बार एक पाठक के तौर पर मुझे परेशान करता रहा है। उपन्यास जिस भारतीय सामाजिक ढांचे की कथा कहता है वह ढांचा पूरी तरह सामंती मनोवृत्ति का सूचक है। जिस शिवपाल गंज की कथा इस उपन्यास के मूल में है वह अपनी आंचलिक उपस्थिति के कारण अवध का कोई कस्बा लगता है। लेखक ने भी लिखा है कि शिवपाल गंज अवध का एक ऐसा कस्बा है जो शहर होते-होते रह गया। राग दरबारी नाम के पीछे की क्या कहानी है यह तो आगे स्पष्ट होगा। यहाँ हम राग दरबारी के आशय को स्पष्ट करना चाहें तो एक संदर्भ के सहारे उसे समझ सकते हैं। संदर्भ है मशहूर अंग्रेजी लेखिका अरुंधती राय के जेल में होने का। जब अरुंधति राय जेल में थीं तो लोग कहते हैं कि उन्हें एक कैदी ने चिट्ठी लिखकर भेजी उसने चिट्ठी में एक छोटी सी कविता लिखकर अरुंधति राय के पास भेजी। कविता में है - *राजा बोला रात है, रानी बोली रात है, मंत्री बोला रात*

है, सब कोई बोला रात है, यह सुबह-सुबह की बात है। राग दरबारी इससे अलग कुछ भी नहीं है। यह दरबारी राग ऐसे समय में गायी जाती है जब उस राजा के दुर्दिन आ जाते हैं। कोई एक व्यक्ति या संस्थान इतना बड़ा हो जाय कि लोग उससे डरने लगें तो ऐसे राज्य का विनाश बहुत जल्द होता है। संभवतः इसी बात को ध्यान में रखकर गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा होगा - *'सचिव, वैद्य, गुरु, तीन जौं प्रिय बोलहुँ भय त्रास। राज, धर्म तव तीन को होएहुँ बेगिहि नास।।'*[5] गोस्वामी जी द्वारा कही गयी बात के ठीक उलट जिस देश में दरबारी राग बज रहा हो वहाँ अनिवार्यतः राग दरबारी जैसे उपन्यास की रचना होती है। राग दरबारी की कथावस्तु की बात करें तो इसकी कथावस्तु के केंद्र में अवध का एक कस्बानुमा गाँव है शिवपाल गंज। शिवपाल गंज आधुनिक भारतीय गाँव का प्रतिनिधि चरित्र हमारे सामने पेश करता है। यह प्रतिनिधिकता कुछ वैसी ही है जैसी रेणु के मैला आँचल के मेरीगंज की प्रतिनिधिकता है। राग दरबारी उपन्यास अपनी शैली में एक व्यंग्य उपन्यास है। इसकी शक्ति इसके व्यंग्यों में निहित है। अपनी व्यंग्यात्मकता की वजह से ही इसे अखिल भारतीय पहचान मिल सकी।

राग दरबारी जिस वर्ष प्रकाशित हुआ उस वर्ष के आसपास के भारतीय इतिहास का घटनाक्रम देखें तो देश का इतिहास और उसकी राजनीति बहुत उथल-पुथल भरी रही है। 20वीं सदी के सातवें दशक की सामाजिक-राजनैतिक गतिविधियों पर नजर दौड़ायें तो हम पाते हैं कि यह दशक 20वीं सदी का सबसे उथल-पुथल भरा दशक है। 1962 में भारत चीन युद्ध, 1964 में नेहरू की मृत्यु, शास्त्री जी का प्रधानमंत्री बनना, भारत-पाक युद्ध, भारत में पड़ने वाला अकाल (जिससे लड़ने के लिए ही शास्त्री जी ने कहा था सप्ताह में एक दिन व्रत रखें, पेट पर रस्सी बांधकर रखें, साग-सब्जी ज्यादा खाएं), भारत में होने वाला चौथा आम चुनाव, शिमला समझौता और लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु और नक्सलवाड़ी आंदोलन। ये घटनाएँ ऐसी हैं जिन्होंने भारतीय लोकतन्त्र और भारतीय राष्ट्र-राज्य की संकल्पना को गहरे तक प्रभावित करती हैं। भारतीय समाज-राजनीति में घट रही इन्हीं घटनाओं के मध्य राग दरबारी का प्रकाशन हुआ। राग दरबारी उपन्यास में इन घटनाओं की अनुगूंजें बहुत साफ तौर पर सुनी जा सकती हैं। भारतीय लोकतन्त्र के 15 वर्षों के विकासक्रम का एक मुकम्मल लेखा-जोखा भी इस उपन्यास में दर्ज मिलता है। यह उपन्यास भारतीय राष्ट्रराज्य की मूल संकल्पना की असफलता की कहानी कहता है। उपन्यास के पात्र भारतीय ग्रामीण परिवेश के जीवन को तो उजागर करते ही हैं, उसके विद्रूप को भी हमारे सामने लाते हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था, भारतीय कानून व्यवस्था, भारतीय न्याय विधान, चुनावी प्रक्रिया और ग्रामीण जीवन जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों को बहुत बेबाकी से इस उपन्यास में दर्ज किया गया है।

उपन्यास की शुरुआत में ही छंगामल इंटर कॉलेज का जिक्र आता है। यह इंटर कॉलेज सिर्फ शिवपाल गंज का ही इंटर कॉलेज नहीं है। यह भारत की शिक्षा व्यवस्था की कलई खोलने के लिए एक प्रतिनिधि विद्यालय के तौर पर उभरता है। वहाँ पढ़ने वाले छात्रों और पढ़ाने वाले अध्यापकों की स्थिति खुद-व-खुद भारत की शिक्षा व्यवस्था की वास्तविकता को व्यक्त कर देती है। अध्यापकों के साथ छात्रों का जिस तरह का संबंध है उसे मास्टर मोतीराम की आपेक्षिक घनत्व की क्लास से समझा जा सकता है। एक उदाहरण के माध्यम से इसे देखिये- 'साइंस का क्लास लगा था। नवां दर्जा के मास्टर मोतीराम, जो एक तरह बी.एस.सी. पास थे, लड़कों को आपेक्षिक घनत्व पढ़ा रहे थे। बाहर उस छोटे से गाँव मे छोटेपन की, बतौर अनुप्रास छटाछाई थी। सड़क पर ईख से भरी बैलगाड़ियाँ शकर मिल की ओर जा रही थी। कुछ मरियल लड़के पीछे से ईख खींच खींचकर भाग रहे

थे। आगे बैठा हुआ गाड़ीवान खींच खींचकर गालियां दे रहा था। गालियों का मौलिक महत्व आवाज की ऊंचाई में है, इसलिए गालियां और जवाबी गालियां एक दूसरे को ऊंचाई पर काट रही थीं और दर्जे में खिंड़की के रास्ते घुसकर पार्श्व संगीत का काम कर रही थी। लड़के नाटक का मजा ले रहे थे, साइंस पढ़ रहे थे।[6] ऐसे माहौल में मास्टर साहब क्या पढ़ा रहे थे इसे देखिये- 'एक लड़के ने कहा, मास्टर साहब आपेक्षिक घनत्व किसे कहते हैं? 'वे बोले, आपेक्षिक घनत्व माने रिलेटिव डेंसिटी।' एक दूसरे लड़के ने कहा, 'अब आप, देखिये, साइंस नहीं अंग्रेजी पढ़ा रहे हैं। वे बोले, साइंस साला अंग्रेजी के बिना कैसे आ सकता है।' लड़कों ने जबाब में हंसना शुरूकर दिया। हंसी का कारण हिन्दी अंग्रेजी की बहस नहीं, साला का मुहावरेदार प्रयोग था।[7] ऐसे लड़कों के बीच पढ़ाने वाले मास्टर साहब भी कम समझदार नहीं थे, उन्होंने जहां इसका ठीक-ठीक जवाब दिया है उसे देखना चाहिए- मास्टर मोतीराम ने कहा, 'आपेक्षिक घनत्व निकालने के लिए उस चीज का वजन और आयतन यानी वाल्यूम जानना चाहिए उसके बाद आपेक्षिक घनत्व निकालने का तरीका जानना चाहिए। जहां तक तरीके की बात है, हर चीज के दो तरीके होते हैं। एक सही तरीका, एक गलत तरीका। सही तरीके का सही नतीजा मिलता है, गलत तरीके का गलत नतीजा। इसे एक उदाहरण देकर समझाना जरूरी है। मान लो तुमने एक आटाचक्की लगाई। आटाचक्की की बढ़िया नई मशीन है, खूब चमचमा रही है, जमकर ग्रीस लगाई है। इंजन नया है, पट्टा नया है। सबकुछ है पर बिजली नहीं है, तो क्या नतीजा निकलेगा?'[8] अब इसके बाद जिस तरह की फिजूल बहस में मास्टर साहब और छात्र उलझते हैं वह हमारी शिक्षा व्यवस्था को आईना दिखाने जैसा है।

जिस छंगामल इंटर कॉलेज के ये छात्र और अध्यापक हैं वह कैसे बना इसे भी देखना चाहिए। श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं - 'दो बड़े और छोटे कमरों का डाक बंगला था जिसे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने छोड़ दिया था। उसके तीन ओर कच्ची दीवारों पर छप्पर डालकर कुछ अस्तबल बनाए गए थे। अस्तबलों से कुछ दूरी पर पड़ी ईटों की दीवार पर टिन डालकर एक दुकान खोली गयी थी। एक ओर रेलवे फाटक के पास पायी जाने वाली एक कमरे की गुमटी थी। दूसरी ओर एक बड़े बरगद के पेड़ के नीचे एक कब्र जैसा चबूतरा था। अस्तबलों के पास एक नए ढंग की इमारत बनी थी जिसपर लिखा था सामुदायिक मिलन केंद्र, शिवपाल गंज। इस सबके पिछ्वाड़े तीन-चार एकड़ का ऊसर पड़ा था जिसे तोड़कर उसमें चरी बोई गयी थी। चरी कहीं-कहीं सचमुच ही उग आई थी। इन्हीं सब इमारतों के मिले जुले रूप को छंगामल विद्यालय इंटरमीडियट कालिज, शिवपालगंज कहा जाता था।'[9] शिवपालगंज की यह शिक्षा व्यवस्था सम्पूर्ण भारत की शिक्षा व्यवस्था के प्रतिनिधि चरित्र को उजागर करती है।

शिवपालगंज की कानून व्यवस्था पर नजर डालें तो पता चलता है कि वहाँ किस तरह की सामंती मनोवृत्ति काम कर रही है। इस उपन्यास की कहानी किन्हीं मुख्य किरदारों के इर्द-गिर्द नहीं घूमती है। उपन्यास में अनेक पात्र हैं और लगभग सभी किरदारों को समान अहमियत दी गई है। गाँव की राजनीति के दो मुख्य ध्रुव हैं- वैद्यजी और रामाधीन भीखमखेड़वी। वैद्यजी अपरोक्ष रूप से गाँव का कॉलेज, कोआपरेटिव सोसाइटी चलाते हैं। इस बार प्रधान पद भी वैद्यजी के गुट में आ गया था। रामाधीन के पास अवैध धंधों का एकाधिकार था। वैद्यजी के दो बेटे थे एक अखाड़े में पहलवानी करता था और दूसरा कॉलेज में राजनीति और गुण्डागर्दी। राग दरबारी का माध्यम किरदार रंगनाथ शहर का पढ़ा हुआ एक लड़का है जो कि कुछ दिनों की छुट्टी के लिए शिवपान गंज में अपने मामा वैद्यजी के पास जाता है। कहानी के स्थानों के वर्णन से यह लखनऊ के पास

किसी स्थान की कहानी लगती है, जहाँ अवधी भाषा बोली जाती है।

कहानी में हास्य है लेकिन हास्य केन्द्रित कहानी कह देना अनुचित होगा। कहानी का केन्द्र व्यवस्था में जड़ जमा चुकी अनैतिकता है। अंत में हर एक पात्र का उद्देश्य सिर्फ यह रह जाता है कि कोई चीज उसके अनुसार हो रही है कि नहीं। व्यवस्था को सुधारने से किसी का कोई उद्देश्य नहीं रह जाता। सरकारी तंत्र के जिन अंगों का यहाँ पर जिक्र हुआ है उनका बहुत ही पतित रूप दिखाया गया है चाहे वह पुलिस हो, न्यायालय हो, सरकारी विद्यालय निरीक्षक हो या गाँव के प्रधान ही क्यों न हो। हर एक व्यवस्था को अपने अनुसार ढाल लेना, यह कोई इस उपन्यास के पात्रों से सीखे। यह करते समय भी ऊपर से आदर्शवाद का दिखावा बनाये रखा जाता है और भाषणों में आदर्शवाद की कोई कमी नहीं दिखाई पड़ेगी। सामान्य जनता में भी शायद इस बात का भरोसा हो गया है कि जिसके पास शक्ति है वही सब कुछ कर सकता है, अन्यथा व्यवस्था से लड़ने का कोई फायदा नहीं है। उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार से रबर स्टाम्प लोगों के माध्यम से सत्ता को परदे के पीछे ने संचालित किया जाता है।

इस उपन्यास में आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच की खींचतान को दिखाया गया है। शहर का पढ़ा हुआ नौजवान रंगनाथ जब किताबी आदर्शों को लेकर गाँव पहुंचता है तो उसे हर एक संस्था भ्रष्ट लगती है। वह हर समय यही कोशिश करता रहता है कि कैसे इस व्यवस्था को सुधार जाये। उसने जब देखा कि अन्याय के खिलाफ लड़ने वालों का पलड़ा कमजोर हो रहा है तो उसने उन लोगों की तरफ से आवाज उठाने की कोशिश भी की और उनको अप्रत्यक्ष रूप से बेईमानी के विरुद्ध लड़ते रहने के लिए उकसाया भी। इतना सब करने के बाद भी जब उसकी कोशिशों का कोई परिणाम नहीं निकला तो उसने हार मान ली और गाँव छोड़कर जाने का फैसला कर लिया। लेकिन तब कहानी के एक अन्य पात्र ने उससे कहा कि जाओगे कहाँ। हर जगह तो बेईमानी और भ्रष्टाचार व्याप्त है। उसने इस बात पर सोचा भी कि छोटे बड़े रूप में हर जगह शासन ऐसे ही चलता है। यही इस उपन्यास का मूल तत्त्व कहा जा सकता है कि अनेक बार जब आदर्शवाद और यथार्थवाद टकराते हैं तो बहुधा पहले हार मानने वाला आदर्शवाद ही होता है।

उपन्यास की भाषा में आंचलिकता के तत्व हैं। उत्तर प्रदेश के अवध प्रान्त में बोले जाने वाले बहुत से शब्द इस्तेमाल किये गए हैं। कई जगह सीधे-सीधे अवधी भाषा में किये गए वार्तालाप को उद्धृत किया गया है। पूरी पुस्तक के हर एक पैराग्राफ में शासन-व्यवस्था पर प्रत्यक्ष रूप से कटाक्ष किया गया है। इस तरह से कहीं भी रुचि कम नहीं होती है। कहानी का अंत थोड़ा अलग है। यह लग सकता है कि अंत अचानक से हो गया है। साथ ही साथ कॉफीहाउस में चलने वाली वैचारिक चर्चाओं पर भी व्यंग कसा गया है जिनका कोई परिणाम निकलकर नहीं आता है लेकिन उसमें भाग लेने वाले इनसे अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेते हैं।

प्रजातंत्र के 'आधार स्तंभ' लेक्चर पर कटाक्ष - फिर भी लेक्चर इतने ज्यादा होते थे कि दिलचस्पी के बावजूद, लोगों को अपच हो सकता था। लेक्चर का मजा तो तब है कि जब सुननेवाले वाले भी यह समझें कि यह बकवास कर रहा है और बोलनेवाला भी समझे कि मैं बकवास कर रहा हूँ। पर कुछ लेक्चर देनेवाले इतनी गम्भीरता से चलते कि सुननेवाले को कभी-कभी यह लगता था यह आदमी अपने कथन के प्रति सचमुच ही ईमानदार है। ऐसा संदेह होते ही लेक्चर गाढ़ा और फीका बन जाता था और उसका असर श्रोताओं के हाजमे के खिलाफ पड़ता है।... ज्यादातर लोग लेक्चर की सबसे बड़ी मात्रा दिन के तीसरे पहर ऊँघने और शाम को जागने के बीच लेते थे।[10]

राग दरबारी उपन्यास के मूल में विद्यमान क्षोभ, दुःख और करुणा की भावानुभूति को पहचानने में कुछ आलोचक चूक गए हैं। चूंकि आलोचक का खुद ही राष्ट्रीय विकास नीति और नेहरू के छद्म समाजवाद में मोहभंग नहीं हुआ था, अतः राग दरबारी की कथावस्तु के अभिप्रायों को वे लगातार नकारवादी बताते रहे। आलोचक जब स्वयं ही समाज व्यवस्था के वस्तुपरक यथार्थ के प्रति मोहासक्त होगा तो उस व्यवस्था के अंतर्गत पल रही मक्कारी, जनविरोधी प्रवृत्ति और विभिन्न पात्रों के उत्पीड़क सामाजिक आचरण को चित्रित करने वाली कथाकृति को, जाहिर है असंतोष का खटराग बताएगा, महाऊब का महाग्रंथ बताएगा और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण का रास्ता छोड़कर आलोचना की अराजकता को फलीभूत करेगा।

राग दरबारी पर पहली समीक्षा नेमिचंद्र जैन ने लिखी थी। उपन्यास की चित्रणशैली में अंतर्भूक्त अंतर्दृष्टि और यथार्थ के प्रस्तुतीकरण में अंतर्भूक्त सामाजिक द्वंद्वात्मकता के बजाय नेमि जी राग दरबारी में आद्यंत यथार्थवादी सपाटता देखते हैं। 1968 में लिखी गई इस समीक्षा को तत्कालीन विवादों से अलग हटकर पढ़ना उचित नहीं होगा क्योंकि उस समय के कथालेखन में प्रायः मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से स्त्री-पुरुष संबंध का अंतर्द्वंद्व प्रस्तुत करने वाली कृतियों को ही श्रेष्ठ माना जा रहा था। बहुत बाद में श्रीलाल जी ने अपना पक्ष रखा और यह बताया कि राग दरबारी की रचना का प्रेरणास्रोत भारतीय ग्रामजीवन के अंतर्विरोधों की पहचान में ही निहित है। नेमि जी की समीक्षा के बाद दो युवा रचनाकारों कमलेश तथा नीलाभ ने राग दरबारी के कथ्य के मूल अभिप्राय की विवेचना प्रस्तुत की। आजादी के बाद के हिंदुस्तान में अपनाई गई गलत नीतियों की सड़ांध के प्रति क्षोभ, क्रोध और घृणा का जैसा कथात्मक वस्तुविधान राग दरबारी में प्रस्तुत किया गया है, उसे 'तीखे रंगों के यथार्थ' की उक्ति द्वारा उपर्युक्त दोनों रचनाकारों ने अभिहित किया। उपेन्द्रनाथ अश्क द्वारा लिखी गई विस्तृत समीक्षा में यह बताया गया कि इस कृति में यथार्थवादिता के साथ कलात्मकता और वस्तु निरूपण का अद्‌भुत सम्मिलन मिलता है। अश्क जी ने कोई अगर मगर नहीं लगाया। यह समीक्षा संक्षिप्त रूप में 'प्रकाशन समाचार' और 'मुक्तधारा' में प्रकाशित हुई थी। यहां यह उल्लेखनीय है कि कमलेश जी ने पहली बार राग दरबारी के आलोचकों की सवर्ण मानसिकता पर प्रहार करते हुए यह बताया कि कुछ आलोचकों के सुसभ्य और शिष्ट मन को झटका-सा लगा क्योंकि मध्यवर्गीय पाबंदों को राग दरबारी के बहुतेरे अंश फूहड़ और अश्लील लगेंगे। शासक वर्ग ने गांवों में मल विसर्जन की सुविधाजनक व्यवस्था का निर्माण नहीं किया है, अतः राग दरबारी में मल विसर्जन के जितने भी वर्णन आए हैं, उन पर अनेक समीक्षकों ने नाक-भौंह सिकोड़ी है। कुंवर नारायण जी ने इसी तरह के वर्णनों के बारे में लिखा है कि 'ऐसे कई स्थल हैं जहां इच्छा होती है कि लेखक यदि इतना अधिक यथार्थ के पीछे नहीं पड़ता तो अच्छा होता, व्यंग्य के हित में बहुत अच्छा होता'। कमलेश जी ने नवम्बर 1968 के 'दिनमान' में प्रकाशित अपनी समीक्षा में आंचलिक उपन्यासकारों की रूमानी दृष्टि की सीमाओं की आलोचना की है और आंचलिक उपन्यासों में राग दरबारी जैसी गैर-रूमानी सौंदर्य-दृष्टि तथा चित्रणविधि के अभाव को रेखांकित किया है।

परमानंद श्रीवास्तव की समीक्षा 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुई थी। उक्त समीक्षा में वे यह बताते हैं कि राग दरबारी द्वारा प्रस्तुत असलियत का सामना हमारा बुद्धिजीवी समाज नहीं कर पा रहा है। वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से हिंदुस्तानी दिमाग के भीतर मौजूद अवरोध तभी समाप्त हो सकता है जब वह मूल्यहीनता के चित्रण के क्रम में व्यंग्यात्मक प्रहार की निस्संगता के प्रति ग्रहणशील होगा। राग दरबारी में तत्कालीन भारतीय गांवों के जीवन यथार्थ के द्वंद्व के

चित्रण की प्रासंगिकता और सार्थकता उपन्यास की शिल्पविधि में परिवर्तन पर निर्भर करती है। कथाविन्यास और शिल्पविधि का यह परिवर्तन परमानंद श्रीवास्तव के विश्लेषण का आधार है। इसी बिंदु पर खड़े होकर वे तमाम आरोपों का खंडन करते हैं और संकेतों के द्वारा विभिन्न समीक्षाओं में उठाए गए प्रश्नों के उत्तर बहुत ही सधे तरीके से देते हैं। इसके बावजूद राग दरबारी को लेकर विवादों का सिलसिला बंद नहीं हुआ, चूंकि विभिन्न आलोचकों के अलग-अलग किस्म के प्रतिमानों के भीतर जो मतांतर थे, वे मूलतः वैचारिक थे, यहां तक कि यह बहस नाक की लड़ाई और गुटबाजी तक में तब्दील हो गई। कमलेश, नीलाभ, उपेंद्रनाथ अश्क और परमानंद श्रीवास्तव को दरकिनार कर श्रीपतराय की जो समीक्षा 'कथा' पत्रिका में प्रकाशित हुई उसमें यह बाजाब्ता एलान किया गया कि राग दरबारी बड़ी ऊब का महाग्रंथ है और अपठित रह जाना ही इसकी नियति है। उनके शब्दों में, 'अतियथार्थ उपन्यास के आंतरिक स्वरूप को नष्ट करता है, निष्कर्ष यह कि यथार्थ की प्रेक्षण विधि पर आकर आलोचना अटक गई, वस्तुतः फंस गई। यथार्थ के रूमानी और गैररूमानी चित्रण की बहस भी लंबे समय तक चलती रही। 1975 में नित्यानंद तिवारी ने अपनी एक आलोचनात्मक टिप्पणी में राग दरबारी के यथार्थ चित्रण की कथनभंगी को 'व्यंग्य लीला' की संज्ञा दी, जबकि 1969 में परमानंद श्रीवास्तव ने इस वैशिष्ठ्य को मूल्यहीनता के चित्रण के लिए जरूरी बताया था। कमलेश्वर 1970 में अपनी टिप्पणी में दो टूक शब्दों में लिख चुके थे 'सचाई यह है कि कथाकार जानबूझकर आघात नहीं पहुंचाता। वह संपूर्ण संदर्भ में कुछ इस तरह प्रेक्षण कर अंतःप्रवेश करता है कि उससे व्यंग्य और उपहास उत्पन्न होता है'।

चंद्रकांत बांदिवडेकर के अकादमिक ढंग के विवेचनात्मक आलेख में तब तक के सभी मतों का समाहार करने का प्रयास देखा जा सकता है। कथ्य को प्रस्तुत करने की दृष्टि से राग दरबारी को वे महत्वपूर्ण उपन्यास मानते हैं। पर नेमिचंद्र जैन की तरह वे यह भी कहते हैं कि इसमें 'नए की तलाश नहीं है, वास्तविकता के अनपहचाने, अपरिचित पहलू को अन्वेषित करने का प्रयास नहीं है।' राग दरबारी पर इस तरह के आरोप प्रारंभ से ही लगते रहे हैं। यद्यपि नेमिचंद्र जैन 'सर्वसामान्य अनुभव-स्तर का दो टूक प्रस्तुतीकरण' इस उपन्यास की उपलब्धि मानते हुए भी कहते हैं कि 'दीखने वाली जिंदगी पर दबाव डालती नीचे कोई और जिंदगी' नहीं है। इसके साथ-साथ वे यह भी कहते हैं कि उसमें न तो कोई द्वंद्व है, न गति। ऐसी टिप्पणियों के परिप्रेक्ष्य में हमें आलोचना और सौंदर्यबोध की अभिजात, भद्रसमाज की संस्कारवादी अभिरुचि की जांच-पड़ताल करनी चाहिए ताकि यह स्पष्ट हो सके कि विरोध का मूल कारण इस तथ्य में है कि राग दरबारी मध्यवर्गीय भाव और विचारबोध पर सीधे-सीधे और बहुत ही दृढ़ता से चोट करता है।

लगभग 12 वर्षों तक आलोचना में जो वितंडावाद छाया रहा, उसने भिन्न किस्म की नई समीक्षाएं 1980 के बाद प्रकाशित होने लगीं। आलोचना के इस नए दौर में अब राग दरबारी को लेकर निंदापरक लेख प्रकाशित होने बंद हो गए। नए आयामों को उद्घाटित करने का सिलसिला शुरू हुआ। 1990 के आसपास भूमंडलीकरण और उदारतावाद को लेकर जो भी नई बहसें हुई, वे सिर्फ राजनीति या अर्थव्यवस्था तक सीमित न होकर साहित्य संस्कृति के क्षेत्रों में भी होने लगीं। इस सिलसिले में एक नई पहलकदमी समाजशास्त्री विद्वानों की ओर से शुरू हुई। इन लोगों ने हिंदी उपन्यासों में चित्रित समाज का विश्लेषण ज्ञान-मीमांसा के नए औजारों से करना प्रारंभ किया। नतीजा यह कि 1980 के पहले की बहसों को दरकिनार कर असंदिग्ध रूप से राग दरबारी को क्लासिक कृति का दर्जा मिल गया। नामवर सिंह अपने विश्लेषण के

द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि व्यंग्य की अतिशयता और गद्यशैली की वक्रभंगिमा वस्तुतः झूठ की खोज के लिए जरूरी है। कृष्ण बलदेव वैद लिखते हैं कि खब्त, विक्षोभ और हास्य (व्यंग्य) का अभाव भारतीय उपन्यासों की एक बहुत बड़ी कमी रही है किंतु श्रीलाल शुक्ल का शुमार हिंदी उपन्यास में व्यंग्य के उन बहुत ही कम बड़े साधकों में किया जा सकता है जिनके काम में नैतिक और बौद्धिक हंसी को निरंतर सुना जा सकता है। इस मंतव्य का तार्किक आधार भी कृष्ण बलदेव वैद प्रस्तुत करते हैं -बुनियादी तौर पर उनके खब्त की जड़ उस कीचड़ में है जिसे हमारे अधिकतर यथार्थवादी उपन्यासकार अधमुंदी आंखों से ही देखते हैं, नीमज्ञान प्रज्ञा से ही आंकते हैं और उसमें से अपने काल्पनिक कमल खिलाते रहते हैं। श्रीलाल शुक्ल उस कीचड़ को खुली आंखों से देखते हैं, उसका निर्मम भावुकता मुक्त कलात्मक चित्रण 'सूनी घाटी का सूरज' से शुरूकर कमोवेश अपने हर उपन्यास में करते हैं, विशेष तौर पर अपने सर्वमान्य शाहकार राग दरबारी में, और उस कीचड़ में से, किसी विचारधारा के दबाव में कोई आशावादी कमल नहीं उगाते।

राग दरबारी के मूल्यांकन से संबंधित हिंदी समालोचना में दो तरह की धाराओं के पीछे कौन से कारण क्रियाशील हैं? खासकर कमलेश, परमानंद श्रीवास्तव, अश्क, कमलेश्वर, नीलाभ, शिवकुमार मिश्र, सुवास कुमार, अरुण कमल, पंकज सिंह, शंभुनाथ, लीलाधर जगूड़ी, पंकज चतुर्वेदी, वैभव सिंह आलोचना की जिस कसौटी पर इस कृति को परखते हैं, उसका मूल उत्स कहां है? आपातकाल से लेकर अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी के आक्रामक दौर के आते-आते, यथार्थ के तीखे अंतर्विरोध के विस्फोट होने के बाद जो समालोचक जीवन को खुली आंखों से देखते हैं, वे इस कृति की प्रासंगिकता और सार्थकता को लेकर पूरी तरह आश्वस्त हैं। इन सभी समालोचकों की समीक्षापद्धति में पुनर्पाठ का विवेचन तर्कातीत नहीं है। पंकज सिंह की यह टिप्पणी बहुत महत्वपूर्ण है कि राग दरबारी के आंतरिक एकालाप में गहरा विडंबना बोध है और यथार्थ के टुकड़ों की पच्चीकारी के साथ जो तिर्यक व्यंजना रिस-रिस कर आती है, उसमें गहन विषाद है और उस विषाद का परिप्रेक्ष्य सघन सामाजिक मानवीयता से निर्मित है। इसी तरह पंकज चतुर्वेदी को यह उपन्यास एक नए देश की तलाश का प्रस्ताव प्रतीत होता है। दरअसल इस कृति में अंतर्निहित अवसाद और करुणा का सांगोपांग विवेचन अनेक कोणों से अनेक लेखों में बहुत ही सटीक ढंग से किया गया है। इस कृति की अंग्रेजी अनुवादिका गिलियिन राइट ने भी बहुत सारे आरोपों का खंडन किया है। गिलियिन राइट के लेख में स्त्री पात्रों की अनुपस्थिति के बारे में पूछे जाने पर रचनाकार का जवाब भी ध्यान देने योग्य है। इस प्रश्न पर सबसे सटीक विवेचन हिमांशु पांड्या ने किया है। यही नहीं हिमांशु ने लगभग सभी प्रकार की आलोचनाओं का तर्कसंगत जवाब 'अप्रकट करुणा के पक्ष' में दिया है। दलित और अल्पसंख्यक चित्रणों के संदर्भ में उठे प्रश्न भी हिंदी आलोचना के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। आलोचना की इस अराजकता में राग दरबारी के विवेचन-विश्लेषण की दो धाराएं अभी तक स्पष्टतः दिखाई पड़ती हैं। वर्णन की कला में अंतर्निहित 'विटबिन द लाइन्स', यानी अनकहे को पकड़ने की कोशिश प्रायः नई पीढ़ी के समालोचकों में ही पूरी स्पष्टता से प्रगट होती है। राजेन जोशी के लेख में अनकहे को पकड़ने का सुझाव भी तार्किकता के साथ आया है। वस्तुतः यह उपन्यास हिन्दी कि जातीय कथा परंपरा को हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

संदर्भ

1. https://www.youtube.com/watch?v=9mecQcg-8Nw.। **2.** प्रतिनिधि कविताएं, फैज अहमद फैज राजकमल प्रकाशन पृष्ठ संख्या-23। **3.** साये में धूप,

दुष्यंत कुमार, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-12। **4.** वही, पृ. सं.-12। **5.** रामचरित मानस गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर पृष्ठ संख्या-118। **6.** राग दरबारी, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-15। **7.** वही, पृष्ठ संख्या-15। **8.** वही, पृष्ठ संख्या 6। **9.** वही, पृष्ठ संख्या-14। **10.** वही, पृष्ठ संख्या-28।

सहायक ग्रंथ

1. राग दरबारी, शुक्ल श्रीलाल, राजकमल प्रकाशन समूह नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2013। **2.** समकालीन भारत, चन्द्र विपिन, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्रकाशन, नई दिल्ली, नया संस्करण 2015। **3.** आज़ादी के बाद का भारत, चन्द्र विपिन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, चतुर्थ संशोधित संस्करण 2009। **4.** भारत गांधी के बाद, गुहा रामचंद्र, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नवीन संस्करण 2014। **5.** भारत नेहरू के बाद, गुहा रामचंद्र ओरिएंट ब्लैकस्वान, नवीन संस्करण 2014। **6.** हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, राजकमल प्रकाशन समुह नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2013। **7.** आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, सिंह बच्चन, राजकमल प्रकाशन समुह नई दिल्ली, नवीन संस्करण 2015। **8.** प्रतिमान, सीसडीएस पत्रिका, संपादक अभय कुमार दुबे। **9.** उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, वीरेंद्र यादव, राजकमल प्रकाशन समूह, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रण 2017।

सहायक आचार्य हिंदी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ-226025
मो. 9451888162
ईमेल :prtirai14.mzu@gmail.com

●

कर्त्तात्रयी

गीता की दृष्टि से तीन प्रकार के कर्त्ता होते हैं -

(1) **सात्विक कर्त्ता -** जो आशक्ति रहित है। अहंकार रहित है। धैर्य व उत्साह से भरा है। सफलता का विकार नहीं- यानी गर्व नहीं। असफलता का विकार नहीं- यानी हताशा नहीं। दोनों में निर्विकार।

(2) **राजसकर्त्ता -** जिसमें हर्ष है और शोक है। जो हिंसात्मक है। जो मलिन है। जो फल का लोभी है। जो रागी है। जो लोभी है।

(3) **तामसकर्त्ता -** जो चंचल चित् है। जो असंस्कारी- उजड्ड है। जो कपटी है। जो आलसी है। जो सदा शोकाकुल रहता है। जो करने योग्य कार्य को टालता-आगे पर सरकाता है- यानी दीर्घसूत्री है। जो असभ्य है। ठग है। दूसरी की वृत्ति को काटनेवाला है- विघ्नसंतोषी है।

हम यदि भीतर झांककर जांचें अपने को तो प्रायः हमें लगेगा हम तामस तो नहीं- राजस कर्त्ता हैं। जब जरा 'मैं' को मिटाने की इच्छा करें, धीरज रखें, शुभ कामों में मन लगावें, अपना काम करते हुए पराए के काम में भी रुचि लेना शुरू करें तो हमारे भीतर सात्विक कर्त्ता झांकने लगेगा। इस प्रकार सोपानों पर चढ़ते हुए संभवतः त्रिगुणातीत के लक्ष्य को भी पा जायें।

(गीता-18वें अध्याय के 26, 26, 28 श्लोकों के भाव)

\- अक्षयचंद्र शर्मा

रेणुकृत मैला आँचल के सामाजिक सन्दर्भ

राजेन्द्र परदेसी

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद के पश्चात फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों में ग्राम चित्रण में आंचलिकता प्रतिष्ठित हुई। अंचल विशेष के लोकजीवन और लोक-संस्कृति के संदर्भ में समाज और राष्ट्र की समसामयिक समस्याओं का चित्रण करने वाले वे पहले उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों में आंचलिकता गहन अनुभूति बन गई है। भारतीय गांवों या अंचल आज भी अपने अज्ञान, अंधविश्वास, रुढ़ियों, विषमताओं और पारस्परिक द्वेष के कारण मैला है। 'मैला आंचल' उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारतीय गांवों में घटित हो रहे परिवर्तनों का एक यथार्थ दस्तावेज है। स्वाधीनतापूर्व के भारतीय ग्राम्य जीवन के सृजनात्मक प्रामाणिक चित्रण के लिए प्रेमचंद के 'गोदान' की जो महत्ता है, ठीक वैसी ही महत्ता स्वतंत्र भारत में 'मैला आंचल' की है। ग्रामीण आंचलिकता को चित्रित करने वाले अनेक कथाकार हुए, लेकिन आंचलिकता को प्रतिष्ठित कराने का श्रेय रेणु को ही है। मैला आंचल के बीसवें अध्याय में बावनदास की मौत, 'गोदान' के होरी की मौत के बाद हिन्दी उपन्यासों में चित्रित सबसे बड़ी त्रासद घटना है। बावनदास भ्रष्टाचार की बेदी पर बलिदान होता है। सन् 1954 में इस उपन्यास के प्रकाशित होने पर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में आंचलिकता जैसी नई प्रवृत्ति को महत्ता मिली। आंचलिकता यहाँ एक जीवित स्पंदित सत्ता के रूप में मौजूद है। रेणु का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। इसकी उपलब्धि 'टेप' शैली के माध्यम से की गई है। बृहत्तर अंग जनपद के लगातार बदलते हुए आज के गांव की आत्मा की गाथा है 'मैला आंचल' में जो सदियों से सोते-सोते अब जागकर अंगड़ाई ले रहा है। इसमें स्वतंत्र्योत्तर काल विशेष की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों का गहन सूक्ष्म चित्रण है।

इस उपन्यास में कोई प्रमुख पात्र-पात्रा नहीं है। सम्पूर्ण अंचल ही नायक है। विषय-वस्तु की विविधता, वर्णन-वैचित्र्य, वातावरण की बहुलता और पात्रों की विविधता है। घटना की बहुलता है, पात्रों का स्वतंत्र विकास हुआ है। कथा का केन्द्र बिन्दु मेरीगंज की योजना प्रतीक रूप में है जो देश के प्रत्येक गांव का प्रतीक है। मैला आंचल नामकरण को स्पष्ट करते हुए रेणु ने लिखा है- 'भारत माता का आंचल धूलि से मैला है। भारत गांवों में निवास करता है। भारत माता ग्रामवासिनी है परन्तु गांवों की दशा अत्यन्त दयनीय है। अज्ञान, अशिक्षा,

अंधविश्वास के विषाणुओं ने ग्रामवासिनी भारत माता का आंचल काट-काट कर मैला और जीर्ण-शीर्ण बना दिया है।' कथानक के केन्द्रीय ग्राम मेरीगंज के बारे में रेणु लिखते हैं- 'यह है मैला आंचल, एक आंचलिक उपन्यास, कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान (बंगलादेश) और पश्चिम बंगाल, विभिन्न सीमा रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है तब हम दक्षिण में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा रेखाएँ खींच देते हैं। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गांव को इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।' लेकिन यह भारतव्यापी कथाक्षेत्र बन गया है। रेणु और मैला आंचल दोनों एक-दूसरे के पर्याय बनकर छोड़ गये हैं अपनी प्रासंगिकता। आज जब रेणु जिन्दा होते और भारतीय प्रजातंत्र का घिनौना रूप देखते तो पता नहीं कौन-सी रचना लिखते? ग्लोबलाइजेशन के वर्तमान युग में एक आदर्श मानव आदर्श गांव, समाज, देश, राष्ट्रनिर्माण का यथार्थ कल्पना में तब्दील हो गया है। ऐसे में रेणु को पढ़ा जाना अत्यावश्यक है।

रेणु का मैला आंचल (सम्पूर्ण भारत के संदर्भ में) स्वाधीनता के इतने वर्ष बाद भी साफ-सुथरा नहीं हुआ। उसकी गंदगी और बढ़ी है। ये गंदगी अनेक समस्याओं के रूप में वर्णित है। यथा- राजनीतिक संबंधी समस्याओं के अन्तर्गत राजनीति के संबंध में अज्ञानता, चुनाव में दलबंदी, थोथा अहिंसावाद उपन्यास में चित्रित है। उपन्यास में वर्णित घटनाकाल में जहाँ नगरों में स्वाधीनता आन्दोलन व्यापक रूप में चल रहे थे, यहाँ ग्रामों में इन आन्दोलनों का कोई प्रभाव नहीं था। ग्रामवासी आन्दोलन के नाम पर चौंक पड़ते थे। अपनी अशिक्षा के कारण स्वतंत्रता आन्दोलन का महत्व समझने में अक्षम थे और उनका राजनीतिक गतिविधियों से कोई सम्बंध नहीं था। नेता का भाषण उनकी दृष्टि में महत्त्वहीन था। आन्दोलन एवं जनजागरण के जुलूस उनके लिए तमाशा भर थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बालदेव द्वारा निकाला गया जुलूस ग्रामवासियों के लिये तमाशा के अलावा कुछ नहीं है। लेकिन बालदेव, कालीचरण, बावनदास आदि ग्रामीणों में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने का प्रयास करते हैं। चुनाव में जातिवाद, भाई-भतीजावाद का बोलबाला है। दलबन्दी के कारण स्वस्थ राजनीति कुंठित हो गई है। शक्ति सम्पन्न और पैसेवाला ही राजनीति में उतरने का साहस कर सकता है। विभिन्न राजनीतिक मतवाद, पार्टियाँ, संगठन और उनकी समस्याएँ, वर्ग-संघर्ष आदि का सविस्तार वर्णन है। कथानक से यह स्पष्ट हो जाता है कि गांवों में भी राजनीतिक हलचल का प्रसार हो रहा है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार ने अहिंसा को जन्म दिया है। सच्चे देशभक्त जहाँ आजादी के लिये प्राणों को न्योछावर कर रहे हैं, वहाँ अवसरवादी स्वार्थी राजनीतिज्ञ अहिंसा की आड़ में जनता का शोषण कर रहे हैं। नगरों की भांति ग्रामों में भी राजनीतिक भ्रष्टाचार व्याप्त है। बालदेव जैसे अवसरवादी नेता अहिंसा का नारा देकर जनता को प्रभावित करके अपने त्याग, बलिदान का मूल्य सूद सहित वसूलते हैं। बालदेव राशन की पर्चियाँ अपने परिचितों में ही बांटता है। यह अहिंसा की आड़ लेकर लक्ष्मी और रामदास के अधिकारों का हनन करने वाले पत्रों पर हस्ताक्षर करते हुए भी नहीं हिचकता। इस कार्य में वह कालीचरण के विरोध की भी परवाह नहीं करता। यह बावनदास के पत्रों को इसलिये नष्ट करने का प्रयत्न करता है कि इनके प्रकाशित हो जाने पर बावनदास देशभक्त के रूप में सम्मानित हो जाएगा। यहाँ राजनीतिक भ्रष्टाचार का नग्नरूप द्रष्टव्य है। दुलारचन्द कापरा तथा छोटन बाबू जैसे भ्रष्टाचारी अहिंसा की आड़ लेकर सत्ता हथियाकर देश को नष्ट करने का कुकृत्य करते हैं। उनके कुकृत्यों का विरोध

करने पर ही बावनदास की हत्या होती है।

स्वाधीनता के पश्चात् अब तक हमारे देश में भ्रष्टाचार अपने चरमोत्कर्ष पर है। राजनीति भ्रष्टाचारियों की शरणस्थली सब दिन बनती आई है। उपन्यास के अनुसार अनैतिक आचरण वाले, जुआ का अड्डा चलाने वाले, देशद्रोही व्यक्तियों को सत्ता में बड़े-बड़े पद दिये गये हैं। वे सरकारी अफसरों से मिलकर खूब भ्रष्टाचार करके अपनी जेबें गरम करते हैं और चोरी छिपे भारत का माल पाकिस्तान (बंग्लादेश) भेजने में भी नहीं हिचकते। भ्रष्टाचार का राजनीतिक रूप बावनदास के प्रसंग में वर्णित है। कलीमुद्दीन घाट से माल से भरी हुई गाड़ियाँ जो पाकिस्तान जा रही थी, रोकता है। लेकिन, गाड़ी से कुचलकर उसका अन्त कर दिया जाता है और उसकी लाश को नदी में फेंक दिया जाता है। नेताओं में व्याप्त भ्रष्टाचार बावनदास के कथन से प्रमाणित होता है।

आज का राजनीतिक परिदृश्य बिल्कुल बदल गया है। रेणु अपने जीवन के उत्तरार्ध में लोकनायक जे.पी. की सम्पूर्ण क्रान्ति से जुड़कर राजनीति की गंदगी को साफ करने के पक्षधर थे। दुःख की बात है कि भाई-भतीजावाद, जातिवाद, हिंसावाद, आतंकवाद, दलबंदी, अपराधीकरण, वोटबैंक, अगड़ा-पिछड़ा-दलित, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष, साम्प्रदायिकता, नेतावाद, तानाशाही, मानवाधिकारों को हड़पने की प्रवृत्ति ने राजनीति को खून की प्यासी काली कलूटी विषधर नागिन बना दिया है जिसकी चपेट में विषाक्त होकर सबसे ज्यादा आबादी मरी और भविष्य में भी मरती रहेगी। हमारी यह आजादी वस्तुतः सत्ता परिवर्तन है जो अंग्रेजों ने जाते समय अपने मानसपुत्रों को सौंप दी थी। राजनीति के भारतीयकरण में ही देश और जनता का कल्याण है। इसीलिए रेणु बार-बार क्रान्ति में कूद पड़ते हैं और नेपाल में तो वे सशास्त्र कान्ति में भी भाग लेकर गुलामी और तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष करते हैं।

धार्मिक समस्याओं का विस्तृत फलक भी उपन्यास में मौजूद है। अनेक धार्मिक रुढ़ियों, अंधविश्वासों के कारण समाज खोखला हो रहा है। अशिक्षा के कारण ग्रामीणों की धार्मिक चेतना कुंठित है। ये पाखण्डी ओझा और ज्योतिषियों के विश्वास के जाल में उलझे हुये हैं। ये सभी मिलकर गाँववालों का शोषण करते हैं। ये लोग प्रत्येक सुधार और नवीनता के विरोधी हैं। मेरीगंज अस्पताल खुलने पर ज्योतिषी जी ग्रामीणों को ऐलोपैथिक दवाओं के विरुद्ध भड़काते हुए कहते हैं कि इन दवाओं के प्रयोग से सारे शरीर में विष फैल जाएगा। डॉक्टर सुई से शरीर में विष का प्रवेश करा देता है। लाल दवा शरीर को कमजोर कर देती है। गाँवों में अंधविश्वास के कारण विधवा औरतों को डाइन समझा जाता है। मेरीगंज के ग्रामीण गणेश की नानी को डाइन मानते हैं। जो रात में बच्चे पर रक्त पीकर नृत्य करती है। इसी अंधविश्वास से ग्रस्त हीरू नामक किसान उसकी हत्या कर देता है। ज्योतिषी जी अपनी चौथी पत्नी को डॉक्टर की दवा नहीं देते। वह मर जाती है। गाँव के मठ-मंदिर भ्रष्टाचार के अड्डे हैं। शिष्यों सहित मठों के महन्त व्याभिचार में लिप्त हैं। सत्संग, बीजक-पाठ, निर्गुण-बाणी आदि की आड़ में युवतियों का सतीत्व लूटा जाता है। मठों के महन्त गांजा, सुलफा, चरस आदि का दम लगाकर व्याभिचार को बढ़ाते हैं। उपन्यास में उपर्युक्त धार्मिक व्याभिचार का यथार्थ चित्रण देखते ही बनता है। लक्ष्मी महन्त की पाप-वासना का शिकार हो जाती है। अंत में रेणु ने लक्ष्मी का चरित्रोत्थान दिखाया है, जो प्रेरणास्पद है।

आर्थिक विषमता और शोषण का यथार्थ चित्र भी मेरीगंज में दिखाई पड़ता है। धनी-निर्धन एवं शोषक-शोषितों के मध्य खाई निरंतर चौड़ी होती जा रही है। गरीबों का शोषण करके धनी वर्ग अपने लिये अनेक प्रकार की सुविधाएँ जुटाता है। यह उच्चाधिकारियों

को डाली तथा रिश्वत देकर अपने पक्ष में कर लेता है तथा उनकी आड़ में गरीबों का शोषण करता है। साहब को दी जाने वाली डाली की पचास रुपये की राशि तहसीलदार गरीबों से वसूलने की बात कहते हैं। शोषित वर्ग इस कदर असहाय है कि कड़ी मेहनत के पश्चात भी स्वयं के लिए भोजन-वस्त्र का जुगाड़ नहीं कर पाता। उनकी स्त्रियों को भी तन ढंकने के लिए पूरा वस्त्र नहीं मिल पाता। गांव के किसानों को बंधुआ मजदूर बनकर जमींदार के लिये काम करना पड़ता है। यह ऋणग्रस्त होकर कभी जीवन भर ऋण नहीं चुका पाता और मरणोपरान्त ऋण का बोझ अपने पुत्र के सिर पर छोड़ जाता है। जमीदार किसानों से एक का दस वसूलता है। ग्राम्यजीवन का अर्थ-वैषम्य, वर्ग-भेद, निर्धनता, ऋण, मंहगाई आदि ज्वलन्त समस्याओं को रेणु ने उठाया है। उपन्यास के अंत में जमीदार (तहसीलदार) द्वारा पांच-पांच बीघा जमीन प्रत्येक भूमिहीन को दिलवाकर समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है। संथाल अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करते देखे जाते हैं।

मेरीगंज के कथानक को वर्णित करते हुए रेणु ने गाँवों में व्याप्त सभी सामाजिक समस्याओं को उठाकर उनका समाधान प्रस्तुत किया है। जैसे जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच की समस्या, प्रेम-विवाह और अनैतिक यौन सम्बन्धों की समस्या, आदिवासियों की समस्या, गाँवों में जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच की समस्या सुरसा मुख की तरह बढ़ती जा रही है। सम्पूर्ण मेरीगंज गाँव कई टोली में विभक्त है। एक टोली दूसरी टोली को अपने से हीन समझती है। राजपूतों और यादवों में जातिगत स्पर्द्धा शत्रुता में बदल जाती है। ब्राह्मण टोली दोनों को लड़ाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करती है। विश्वनाथ प्रसाद कानून की आड़ में अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। खिलावन सिंह यादव भंडारे में सम्मान पूर्वक नहीं बुलाये जाने के कारण नहीं जाते। सहदेव मिसिर फुलिया के यौवन का उपयोग तो करता है लेकिन उसके हाथ का छुआ खाने में संकोच करता है। रेणु प्रेम-विवाह तथा अंर्तजातीय विवाह की समस्या भी उठाते हैं।

'मैला आंचल' के सभी पात्र या तो अज्ञात कुलशील हैं या जाति-पाँति की रुढ़ियों को तोड़ने वाले हैं। डॉक्टर प्रशांत और बाबा बावनदास अज्ञात कुलशील है, लक्ष्मी जाति के बंधनों से मुक्त हो चुकी है। कमली अज्ञात कुलशील वाले डॉ. प्रशांत को प्राप्त करती है। रेणु जाति-पाँति विरोधी हैं। वे प्रेमविवाह का समर्थन करते हैं। कमली के पिता विश्वनाथ कमली और प्रशांत के विवाह में बाधक नहीं बनते। विवाह पूर्व ही कमली डॉ. प्रशांत से यौन संबंध स्थापित करके गर्भवती हो जाती है। डॉ. प्रशांत कमली को पत्नी के रूप में स्वीकार करके वस्तुतः अर्न्तजातीय प्रेम विवाह करते हैं। मंगला और कालीचरण के मध्य भी यही स्थिति है। लक्ष्मी और बालदेव भी विजातीय हैं, लक्ष्मी प्रेम के कारण ही बालदेव के घर में आती है। इस प्रकार रेणु ने विवाह संस्था का बहिष्कार भी किया है। रेणु ने सामाजिक संकीर्णताओं की समाप्ति के लिए प्रेमविवाह का समर्थन किया है। घर-घर घूमकर सुमरित दास जो प्रचार करता है, उसमें विवाह-संस्था को नकारा गया है। यथा- 'तुम लोग तो जानते हो, पाँच पंच को जनाकर जब-जब शादी की बात पक्की हुई एक-न-एक विघन पड़ गया। इसलिये काशी के पंडितों ने गंधर्व विवाह करने को कहा। यही गंधर्व विवाह की बात किसी को मालूम नहीं होने दी जाती है।'

बीमारियों और उससे मुक्ति गांवों की प्रमुख समस्या है। यह समस्या मेरीगंज जैसे तराई के गाँवों में मलेरिया, हैजा, चेचक, कालाजार के रूप में भीषण कहर ढाती है। डॉ. प्रशांत द्वारा इस समस्या को बड़ी सफलता से सुलझाया जाता है। रेणु सामाजिक, राजनीतिक सरोकारों से गहराई से जुड़े हुए कथाशिल्पी थे। उन्होंने 'मैला आंचल' में जो

समस्याएँ वर्णित की हैं, वे आज भी मौजूद हैं। कई समस्याएँ तो अपना क्षेत्र विस्तार कर चुकी हैं और कई नई समस्याओं का उदय हुआ है। आज गांवों में भी अनैतिक यौन संबंधों के कारण एड्स तक फैल चुका है और हत्याएँ भी होने लगी हैं। प्रेम संबंधों के विवाह में परिणत होने पर भी पारिवारिक मान्यता नहीं मिलती, कानून की मार अलग से पड़ती है। मठ-मंदिर उजड़ चुके हैं, लेकिन वासना का खेल रुका नहीं है। वैयक्तिकता की बलिवेदी पर सामाजिकता की बलि चढ़ चुकी है। राजनीतिक आर्थिक भ्रष्टाचार सामाजिक जीवन की जड़ें हिलाकर कमजोर कर चुका है। रेणु को यह अहसास हो चुका था कि उपन्यास में समस्याओं का जो समाधान प्रस्तुत किया गया है, वह सरजमीं पर कहीं दिखाई नहीं देता। इसीलिये वे सन् 1974 में जे. पी. के आन्दोलन में सम्पूर्ण क्रान्ति के समर्थक और उसके सप्त आयामों में से एक सांस्कृतिक क्रान्ति के अगुआ बनकर समाधान की दिशा में आगे बढ़ रहे थे।

मैला आंचल की समस्या आज भी देशव्यापी है। इसके समाधान के लिये डॉ. प्रशांत जैसे समाज सेवी की आवश्यकता है। उपन्यास के अन्य पात्र भी रुढ़िवाद, सड़ी-गली परम्पराओं के विरुद्ध संघर्ष करके मैला आंचल के मैल को धोने का प्रयास करते हैं। यह संघर्ष वस्तुतः रेणु का संघर्ष है। रेणु की कथनी और करनी में अन्तर नहीं था। हम सबके समक्ष उनका अनन्त प्रश्न बनकर खड़ा है मैला आँचल। क्या मैला आँचल साफ हो सकेगा।

44, शिव विहार, फरीदी नगर
लखनऊ-226015
मो. 09415045584

●

आत्मकल्याण का पथिक

गुरु गोरखनाथ भ्रमण कर रहे थे। एक योगी मिला। अपनी सिद्धि का उसे गर्व था। उसने अपनी काया को वज्र की तरह बना लिया था। योगी ने घमंड में भरकर गुरु गोरखनाथ के हाथ में अपनी तलवार देकर कहा--'योगिराज! देखिये, मेरी कायासिद्धि को। इस तेज धारवाली तलवार का मुझ पर वार कीजिए। फिर देखिए, मेरे वज्र शरीर की अजेय दृढ़ता को।'

गोरखनाथजी ने तलवार को जोर से चलाया, पर तलवार योगी के शरीर से टकराकर रुक गई। योगी का शरीर ज्यों-का-त्यों रहा। दृढ़ता की चरम सीमा!

गुरु गोरखनाथ ने हंसकर योगी को तलवार लौटा दी और कहा-- 'अब तू मुझ पर चला।' योगी ने जोर से तलवार फटकारी, पर आश्चर्य, तलवार शरीर के आर-पार हो गई जैसे हवा में चली हो। योगी बार-बार तलवार चलाता रहा-- कभी गर्दन पर, कभी वक्षस्थल पर और कभी पेट पर, लेकिन गोरखनाथ पर कोई असर नहीं। योगी ने तलवार फेंक दी, पैरों पर गिर पड़ा।

गोरखनाथ--'देख, यह साधना है-- मैं शरीर नहीं, मन नहीं, बुद्धि नहीं, आत्मा हूँ की साधना। यह है कायजय, मनोजय, बुद्धिजय! आत्मस्वरूप में रमण!'

गोरखनाथ ने यह चमत्कार दिखाकर चमत्कारों की व्यर्थता दिखाई! गोरखनाथ ने कहा-- 'छोड़ यह चमत्कार, मनोजय में लग। आत्मकल्याण का पथिक बन।'

- अक्षयचंद्र शर्मा

केदारनाथ सिंह की कविताओं में लोक के सार्वकालिक बिम्ब

नवनीत

शोध सारांश - केदारनाथ सिंह एक बिम्बवादी एवं शहर गांव के बीच बसे हुए कवि हैं। उन्होंने लोकजीवन को गांवों और कस्बों में बहुत निकटता से देखा है। अपने बाल्यकाल और जीवन का एक समय उन्होंने गांव कस्बे में भी जिया। इसीलिए वे अपनी कविताओं के माध्यम से अपने गांव की लोकोन्मुखी प्रवृत्तियों का जिक्र कर पाए हैं। लोक के अर्थपूर्ण बिम्बों के साथ कवि ने लोकजीवन की सांस्कृतिक भूमि को भी छुआ है। पुरातन विश्वासों, मान्यताओं, संस्कारों के इतर वे लोक के उस चेहरे से पाठक को अवगत कराते हैं जो समय की हर दहलीज पर नया ही प्रतीत होता है। इसी तरह वे लोक समाज के विभिन्न प्राकृतिक तथा मानवीय क्रिया-व्यापारों एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों को अपनी कविताओं के माध्यम से नये बिम्बों में उतारते हैं। लोक में प्रकृति का विशेष स्थान होता है। जंगल, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, मिट्टी-पानी, नदी, खेत-खलिहान आदि प्राकृतिक जगत का महत्व और उनकी आधुनिक समाज में स्थिति का अंकन वे अपनी कविताओं में पूरी सामाजिक सरोकारिता के साथ करते हैं। **बीज शब्द -** बिम्बधर्मी, अनुभूति, लोकोन्मुखी, देहात, आस्था, जटिलता, लोकसंसार, मानवेतर।

केदारनाथ सिंह हिंदी साहित्य के प्रयोगवादी और नई कविता आंदोलन से जुड़े कवि रहे। इनकी कविताएँ शहर और गांव की सीमाओं को स्पर्श करती हुई समय, समाज और भौगोलिक सभी स्थितियों को पार करके आधुनिक दौर के समस्त लोक समाज को चित्रित करती हैं। केदारनाथ सिंह की कविताएं मुख्यतः बिम्बों को लेकर आगे बढ़ती हैं। उनके काव्य सृजन में उनकी अधिकांश कविताएँ पाठक या श्रोता के लिए एक विशेष ध्वन्यात्मक, दृश्य, घ्रांण आदि ऐंद्रीय बिम्ब बनाकर भाषा एवं विचारों को तीव्र अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति देती हैं। खास तौर पर बिम्बों के लोकोन्मुखी तेवर को लेकर बिम्ब की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - 'एंद्रीयता बिम्ब का प्रथम गुण है। हम ना हवा का निर्माण करते हैं, ना फूल का, न अन्न का और न धरती का। हम केवल उस बिम्ब का निर्माण करते हैं जो हमें इन सभी वस्तुओं के संबंध में प्राप्त होता है। जिस कवि का जीवन और जगत के वृहत्तर यथार्थ से जितना गहरा रागात्मक संबंध होगा वह उतने ही सफल बिम्बों का निर्माण कर सकेगा। बिम्ब वास्तविकता के विभित्र स्तरों तक पहुंचने का एक नितांत व्यक्तिगत एवं आत्मपरक मार्ग

है।" प्रयोगवादी कविताओं में जहां वे शहरी समाज के यथार्थ को दिखाते हैं वहीं पर वे सहसा लोक की भीनी गंध के साथ गांव-देहात के अंचल तक हो आते हैं। इस लोक जगत के बिम्बों को वे समय की सीमा से आगे लाकर समकालीन स्थियों में उसके स्मरण की महत्ता को स्पष्ट करते हैं, उन्हें शहर के जीवन में उसकी आवश्यकता के साथ जोड़ने का प्रयत्न करते हैं -

'आज की शाम
जो बाजार जा रहे हैं
उनसे मेरा अनुरोध है
x x x
हम अपने थैले और डोलचियाँ
रख दें एक तरफ
और सीधे धान की मंझरियों तक चलें।"[2]

डॉ. शेरपाल सिंह लिखते हैं- 'उपरोक्त पंक्तियों में सामाजिक यथार्थ की एक सच्चाई उभर कर आई है। वह है कि मण्डियों में धान पैदा नहीं होता। यहां समाज का पथ प्रदर्शित करते हुए कवि कहता है कि सच्चाई को पहचानो उसकी ही आवश्यकता आज समाज को है। मण्डी रूपी वह बाजार तो दिखावा है, वास्तविकता तो यह है कि खेतों में धान उपजता है वहीं हमारी जड़ें हैं उन्हीं को पहचानने की आवश्यकता है।"[3]इस प्रकार कविता में कवि ने धान की मंझरियों के बिम्ब से बाजार के अस्तित्व को बहुत गौण बताने का प्रयत्न किया है। यह बिम्ब लोक समाज में खेतों और खलिहानों के ग्रामीण कृषि की परंपरागत व्यवस्था को रेखांकित करता है। लोक किसी भी समाज में वह क्षेत्र या घटनास्थल हो सकता है जहां कि आज भी पारंपरिक क्रिया-व्यापार, संस्कृति जीवनबोध, स्थिर मानव-प्रकृति के कार्य-व्यवहार एवं रीति-नीतियों के साथ मान्यताओं-विश्वासों का अस्तित्व बना हुआ है।

कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार- 'आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में पले अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं।"[4] वहीं श्याम परमार लोक की व्यापकता को अंकित करते हुए लिखते हैं- 'लोक साधारण जन-समाज है जिसमें भू-भाग में फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परंपराओं की शेष राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है किंतु लोक दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है।'[5]कवि लोक के सांस्कृतिक बिम्बों का भी प्रयोग करते हैं। उन्होंने अपने जीवन में आधुनिक सभ्यता को जिया है। वह जितना परिवर्तन और नूतन विकास के हिमायती लगते हैं उतना ही वे लोक संस्कृति के जीवन मूल्यों को भी जरूरी समझते हैं। परंतु वे लोक में बसे जीवन के उन रूढ़ और अमानवीय रीति-नियमों, विश्वासों एवं परंपराओं को भी समय एवं समाज की उन्नति के सापेक्ष बदलाव के पक्षधर हैं। परिवार के सौहार्दपूर्ण संबंधों, पारस्परिक सहयोग एवं बंधुत्व, जीवन के प्रति आस्था, संतुलित नैतिकताओं के प्रति विश्वास और प्रकृति के प्रति उदार भाव उन्हें अपने ग्रामीण लोक अंचल से ही प्राप्त हुए हैं। डॉ. जगजीवन शर्मा लिखते हैं - 'लोकजीवन एवं संस्कृति से कवि केदारनाथ सिंह का गहरा लगाव रहा है तथा ग्रामांचल की प्रकृति से आत्मिक संबंध। ग्रामीण संस्कृति तथा प्रकृति से इसी लगाव के कारण ही उनकी कविता में बार-बार जमीन, बारिश, गांव के पशु और गांव की वनस्पतियां काव्य विषय बनकर आए हैं। उनके व्यक्तित्व की विशेषता है कि वे अपनी संस्कृति व अपने ग्रामीण समाज की परंपराओं को कभी नहीं भूलते।"[6]

कवि इस ग्रामीण अंचल में होने वाले धार्मिक तथा ईश्वरीय अनुष्ठानों के प्रति अपने विश्वास की कम ही सम्भावना रखते हुए भी अपने कहीं अंदर एक आस्था-सी महसूस करते हैं। वे जीवन की मशीनी जटिलता के इस युग में एक स्थल पर इस तरह के

बिम्ब कविता में उकेरते हैं कि मनुष्य को अनुभूति हो कि एक ऐसा संसार भी है जो जीवन में रहस्य से भरा है। जहां मनुष्य किसी अज्ञात सत्ता के प्रति पूर्ण रूप से विश्वास व्यक्त करता हुआ आग के ऊपर चलने लगता है। उस व्यक्ति में एक दैवीय शक्ति प्रकट होने लगती है। आग और मनुष्य के प्राचीन चिरंतन संबंधों के साथ कवि लिखते हैं -

'यह उन दिनों की बात है
जब लोग आग पर चलने की घटनाओं पर
विश्वास करते थे,
वह एक पूजा की तरह होता था
x x x
आदमी ने कुछ सोचा
फिर आव देखा न ताव
बस पहले ही अंगारे पर
रख दिया पाँव
x x x
आग ने कितनी देर बर्दाश्त किया आदमी को
आदमी ने कितनी देर सामना किया आग का
यह एक सुंदर गाथा है।"[7]

इस प्रकार अंगारों में जल रही आग का सामना कर रहे व्यक्ति के प्रति कवि की अंगारों की तरह आस्था रहती है जो समय के साथ बुझ गई पर ऐसा लगता है कि उसकी आँच कभी गई नहीं -

'पर इतने बरसों तक
अविश्वास करते-करते
मेरा मन अपने से ऊब चुका है पूरी तरह"[8]

कवि ने लोक जीवन के मूल्यों एवं प्रकृति के प्रति गहरी आस्था को भी अपनी कविताओं के माध्यम से उजागर किया है। वे गांव में जी रहे लोगों की जीवन के प्रति कृतज्ञता, भोजन के महत्व, पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षियों के इस लोक संसार में उपयोगिता को भी उजागर करते हैं -

'हरा पत्ता
कभी मत तोड़ना
और अगर तोड़ना तो ऐसे
कि पेड़ को जरा भी न हो पीड़ा।
रात को रोटी जब भी तोड़ना
तो पहले सिर झुकाकर
गेहूँ के पौधे को याद कर लेना
x x x
अगर कभी लाल चींटियाँ
दिखाई पड़ें
तो समझना
आँधी आने वाली है।"[9]

डॉ. जगजीवन शर्मा लिखते हैं- 'कुछ सूत्र जो एक किसान बाप ने बेटे को दिए, नामक कविता में ग्रामीण मान्यताओं में विश्वास तो झलकते हैं लेकिन साथ ही पिता अपने पुत्र को परंपरागत रुढ़ियों से हटकर ऐसे सूत्र देता है जिसमें नवीनता और जागरूकता के प्रति आग्रह है।"[10] लोक जीवन के समाज से संदर्भित बिम्बों में कवि कस्बे, ग्रामीण, देहात एवं वन्य क्षेत्रों में रह रहे लोगों के जीवन को समझने एवं अनुभव करने में सटीक बिम्बों का प्रयोग करते हैं। वे एक देहाती कार्यकर्ता को एक ग्रामीण परंपरागत अंचल में बसे उस व्यक्ति के रूप में बिंबित करते हैं जो अपनी हरकतों, वेशभूषा, भाषा-व्यवहार से शहरी सभ्यता की तुलना में बिल्कुल अलग है। कवि लिखते हैं -

'उसके सवालों और उसके तम्बाकू पर
तिलमिला उठता हूं मैं
मैं बेहद परेशान हो जाता हूं
उसकी गलत-सलत भाषा
उसके शब्दों से गिरती धूल
और उसके उन बालों पर"[11]

स्पष्टतः उस देहाती व्यक्ति की भाषा लोक की सहज, नैसर्गिक और स्थानीय बोली है। उसके हाव-भाव और उसके व्यवहार वार्तालाप के रूप में असभ्य माने जाने वाले शब्दों से युक्त है। उसके शब्दों की धूल उसके लोक की आंचलिकता को ली हुई है।

क्योंकि यह लोक-देहात का अपना स्वभाविक रूप है। कवि ने लोक समाज की वस्तुओं और स्थितियों को दिखाकर लोक जीवन में रह रहे लोगों के विकट समय को भी कई बिम्बों के माध्यम से प्रकट किया है। नदी के तटों पर बाढ़ आ जाए तो वह लोग घबराते नहीं हैं। अपने गांव समाज के साथ पुनः गांव को बसाते हैं। इस प्रकार जीवन और समाज के प्रति गहरी आस्था कवि इन ग्रामीण जनों मे देखते हैं। इसी संदर्भ में वे लिखते भी हैं -

‘पानी से घिरे हुए लोग
प्रार्थना नहीं करते
x x x
फिर वे गाड़ देते हैं खम्बे
तान देते हैं, बोरे
उलझा देते हैं, मुंज की रस्सियाँ और टाट
x x x
वे ले आते हैं आम की गुठलियाँ
खाली टिन
भूने हुए चने
वे ले आते हैं, चिलम और आग
फिर बह जाते हैं उनके मवेशी
उनकी पूजा की घंटी बह जाती है”[12]

डॉ. जगजीवन शर्मा लिखते भी हैं, ‘पानी से घिरे हुए लोग, कविता में भी आस्था और परिवर्तन के स्वर हैं।”[13] ग्रामीण अंचल में लोगों का जंगलों से गहरा संबंध होता है। लोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षतः जंगल के पेड़-पौधों पर कहीं ना कहीं निर्भर होते हैं। इसी संदर्भ में कवि ने एक बढ़ई को कविता में स्थान देकर उसके प्राकृतिक संबंधों एवं उसके अपने जीवन के बीच की पारस्परिक प्रतिकूल स्थितियों को बिम्बित किया है -

‘वह लकड़ी चीर रहा था
कई रातों तक
जंगल की नमी में रहने के बाद उसने फैसला
किया था
x x x
उसकी आरी कई बार लकड़ी की नींद
और जड़ों में भटक जाती थी
कई बार एक चिड़िया के खोते से
टकरा जाती थी उसकी आरी
x x x
वह चीर रहा था
और दुनिया दोनों तरफ
चीरे हुए पटरों की तरह गिरती जा रही थी”[14]

डॉ. जगजीवन शर्मा लिखते हैं- ‘केदारनाथ सिंह की कविता में गाँव का वातावरण ही ऐसा है जिसमें श्रम व संघर्ष कूट-कूट कर भरा पड़ा है।”[15] कवि ने इस ग्रामीण लोक को जिया है। वह अपने गांव चकिया में काफी समय तक रहे। उन्होंने गांव का जीवन और वहां की हर एक स्थिति को अनुभव किया है। लंबे समय तक शहर में रहकर उन्होंने समझा है कि एक नैसर्गिक एवं निश्चित जीवन भी संसार में होता है जो सभी दैनिक जीवन की दुविधाओं, कृत्रिमताओं, असहाय स्थितियों, जटिलताओं एवं उदासी से बहुत दूर है। वे ऐसे समय में उस गड़ेरिये को अपनी स्मृति में बिंबित करते हैं जो कि इन सभी आधुनिक स्थितियों से परे है। अपनी भेड़ों के साथ इस दुनिया में खुश रहा करता था। भले वह दुखी और निराश था किंतु उसे अपने जीवन संघर्ष में दृढ़ता और जीवन शक्ति में अपार श्रद्धा थी। क्योंकि वह चेहरा बूढ़ा हो कर भी जीवित था -

‘यहाँ तक आते-आते
मैं बहुत कुछ भूल चुका हूँ
बहुत कुछ जिसे याद रखना
बहुत जरूरी था
x x x
मुझे क्यों याद है?
एक बूढ़े उदास गड़ेरिये का चेहरा
जिसे मैंने एक दिन
नदी में देखा था
जहाँ उसकी भेड़ें पानी पी रही थी
मैंने देखा-वहाँ उसकी झुर्रियों में

अब भी जगह थी
जहाँ एक चिड़िया
अपना घोसला बना सकती थी"[16]

इस प्रकार एक बूढ़े उदास गड़ेरिये का झुर्रियों वाला चेहरा और झुर्रियों में एक पक्षी के घोंसले के बनने की संभावना को व्यक्त करते हुए कवि ने एक लोक-देहात में रहने वाले आम बुजुर्ग के जीवन की सार्थकता को बिंबित करने की कोशिश की है। लोक के प्राकृतिक बिम्बों पर विचार करें तो कवि ने प्राकृतिक घटनाओं, वस्तुओं, मानव-प्रकृति अंत:संबंधों और स्थितियों को बड़े सुंदर तरीके से बिंबों के माध्यम से अपनी कविता में भरा है। केदारनाथ सिंह बिंबधर्मी कवि हैं।

'अकाल में दूब' कविता में जब कवि को टूटे हुए कांच के बीच जमीन पर एक उगी हुई दूब की हरी पत्ती दिखती है, ये बात कवि के पिता को ज्ञात होने पर पिता का कहना था अभी बहुत कुछ है, कवि का उद्देश्य ग्रामीण समाज के बीच जीवन और प्रकृति के प्रति गहरी आस्था के रूप को दिखाना है -

'भयानक सूखा है
पक्षी छोड़कर चले गये हैं
पेड़ों को छोड़कर चले गये हैं चींटे
चीटियाँ
देहरी और चौखट
पता नहीं कहीं-किधर चले गए हैं।
x x x
शीशे के बिखरे हुए टुकड़ों के बीच
एक हरी पत्ती
दूब है
हाँ-हाँ दूब है-
पहचानता हूँ मैं
लौटकर यह खबर
देता हूँ पिता को
अंधेरे में भी
दमक उठता है उनका चेहरा
है अभी बहुत कुछ है
अगर बची है दूब..."[17]

इसी तरह पानी को पृथ्वी का प्राचीनतम नागरिक मानते हुए कवि ने पानी की व्यथा और उसका प्रकृति के लिए माहात्म्य को स्पष्ट किया है -

'प्रभू
मैं पानी पृथ्वी का
प्राचीनतम नागरिक
x x x
कल एक वो आई
और बैठ गई मेरे बाजू में
पहले चौंक कर उसने इधर-उधर देखा
फिर अपनी लम्बी चोंच गड़ा दी मेरे सीने में
x x x
दिन के कोई तीसरे पहर
एक जानवर आया हकासा-पियासा
और मुझे पीने लगा चभर-चभर
x x x
यह एक पशु के आन्नद की आवाज थी'[18]

कवि नदी के अतीत और उसके नाम के अर्थों को स्पष्ट करते हैं। वे बिंबात्मक माध्यम से इंगित करते हैं कि एक नदी चाहे उसका नाम हो अथवा न हो परंतु वो शांति से अपने मार्ग में चलती रहती है। परंतु मानव-मानवेत्तर समाज उसके बिना नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि नदी और सम्पूर्ण जीवन की मुक्ति परस्पर एक-दूसरे के साथ अमिट संबंधों में ही मौजूद है। कवि उस 'बिना नाम की नदी' जो उनके गाँव के बीच से बहती है के विविध अर्थों को मनुष्य और मनुष्येत्तर जगत के संदर्भ में प्रकट करते हैं -

'मेरे गाँव को चीरती हुई
पहले आदमी से भी बहुत पहले से
चुपचाप बह रही है, यह पतली-सी नदी
जिसका कोई नाम नहीं
x x x
कहीं कोई आता है
लोग उठाते हैं

और नदी जहाँ सबसे ज्यादा चुप और अकेली है
उसी के आजू-बाजू फूँक आते हैं।
x x x
सूरज निकलने के काफी देर बाद
आती हैं भैंसें
नदी में नहाने के लिए।"[19]

इसी तरह 'नदियाँ' कविता में कवि मुक्ति की इसी तस्वीर को और स्पष्ट करते हैं। वे जीवन-मृत्यु के मध्य कहीं न कहीं नदी को जोड़ते हुए प्रकृति और मनुष्य के पारस्परिक अटूट संबंधों पर विचार करते हैं। तात्विक स्तर पर जल और जीवन को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं

'उसकी नशों में बहता है
पहाड़ों का खून
जिसमें थोड़ा-सा खून
हमारा भी शामिल है
और गरम-गरम दूध
टपकता हुआ भूरे दरख्तों की छाल में
x x x
अन्त और आरम्भ
अपने विरोध की सारी उष्मा के साथ
जिस जगह मिलते हैं
कहीं वहीं से निकलती हैं
सारी की सारी नदियाँ।"[20]

कवि पेड़ों की मनुष्य के साथ गहरी अनुभूतियों और जीवन के सार्वकालिक संबंधों की ओर संकेत करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार मनुष्य पेड़ से कभी भी पीछा नहीं छुड़ा सकता। मानव पेड़ों के कटाव और हरे रंग की महत्ता की सोच को दरकिनारा कर अपनी संदेह करने वाली जीवन पद्धति से आजाद नहीं होगा तो उसे जीवन के सहज और वास्तविक अर्थ नहीं पता चलेंगे। इनके बिना हर प्रकार के कला, साहित्य और सौंदर्य के कार्य-व्यापार अपूर्ण ही रह जाएंगे -

'एक हरी-भरी डाल के नीचे गुजरते हुए
तुम्हें पता भी नहीं चलेगा
कि हरा एक ऐसा रंग है
जो सीधे आदमी के शक पर चोट करता है
x x x
इस कोरे कागज पर तुम जो कुछ लिख रहे हो
उसमें पेड़ों की यातना भरी चुप्पी भी शामिल है।"[21]

निष्कर्ष - कवि ने अपनी कविताओं में ग्रामीण और देहाती जीवन के वह बिम्ब उकेरे हैं जिनमें आम समाज लोक की साधारण जीवन शैली में अपने मूल मानव के सहज रूप को संजोए हुए है। इसका एक पहलू परिवर्तन की मांग करता है तो दूसरा मनुष्य में मानवीय प्रेम के विविध शाश्वत रूपों को बनाए रखने हेतु प्रेरित करता है। कवि ने इसी दूसरे रूप को लोक समाज और उसकी प्रकृति के निकट पाया है। इस लोक का मनुष्य अपने चारों तरफ के चराचर जीव-जगत से कुछ ना कुछ संबंध रखता है, उससे संघर्ष करता है, उससे सीखता है। वह प्रकृति का सम्मान करता है। उसके पवित्र नियमों के प्रति विश्वास रखता है। कवि इस प्रकृति के निकट रहने वाले समाज की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में आज की आधुनिक सभ्यता का अवलोकन करता है। वह पुरातन जड़ परंपरा, मान्यता एवं खोखले विचारों को स्वीकार न करते हुए भी इस लोक संस्कृति की मानव प्रकृति साहचर्य संबंधी पुरातन और मौलिक संवेदनाओं, संस्कारों एवं विचारों को महत्वपूर्ण मानता है। कवि ने अपने लोक से लिए गए बिंबों में एक जीवंतता ढूंढ़ते हुए सभी समय में उनकी प्रासंगिकता को स्पष्ट किया है।

संदर्भ

1. डॉ. केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिंदी कविता में बिम्ब विधान, भारतीय ज्ञानपीठ, नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली, सं. प्रथम. पृ. 21। **2.** संपादक-श्रीमती सुधा, लेखक-केदारनाथ सिंह, समकालीन हिंदी कविता, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, अंसारी रोड दरियागंज, सं. 2015, पृ. 232। **3.** डॉ. शेरपाल सिंह, केदारनाथ सिंह का काव्य लोक, विद्या प्रकाशन, गुजैनी-कानपुर, सं. 2005, पृ. 105। **4.** कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, के. पी.

कक्कड़ रोड, इलाहाबाद, सं.1995, पृ.11। **5.** श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1954, पृ.10। **6.** डॉ. जगजीवन शर्मा, समकालीन कविता में ग्रामीण बोध, शुभदा प्रकाशन, सुभाष पार्क शाहदरा, दिल्ली, सं. 2010, पृ.68। **7.** केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, दिल्ली, सं. 2019 पृ.126। **8.** केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, दिल्ली, सं. 2019, पृ.127। **9.** संपादक श्रीमती सुधा, लेखक केदारनाथ सिंह, समकालीन हिंदी कविता, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, अंसारी रोड दरियागंज, सं. 2015, पृ. 235। **10.** डॉ. जगजीवन शर्मा, समकालीन कविता में ग्रामीण बोध, शुभदा प्रकाशन, सुभाष पार्क शाहदरा, दिल्ली, सं. 2010, पृ.61। **11.** केदारनाथ सिंह, यहां से देखो, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जगतपुरी, दिल्ली, सं. 2019, 11। **12.** केदारनाथ सिंह, यहां से देखो, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जगतपुरी, दिल्ली, सं. 2019, 18। **13.** डॉ. जगजीवन शर्मा, समकालीन कविता में ग्रामीण बोध, शुभदा प्रकाशन, सुभाष पार्क शाहदरा दिल्ली बोध, शुभदा प्रकाशन, सुभाष पार्क शाहदरा, दिल्ली, सं. 2010, पृ. 58। **14.** केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, दिल्ली, सं.2019, पृ. 32-33। **15.** डॉ. जगजीवन शर्मा, समकालीन कविता में ग्रामीण बोध, शुभदा प्रकाशन, सुभाष पार्क शाहदरा, दिल्ली, सं. 2010, पृ.39। **16.** केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, दिल्ली, सं.2019, पृ.116-117। **17.** केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, दिल्ली, सं. 2019, पृ. 41। **18.** केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, दिल्ली, सं. 2019, पृ.32-33। **19.** केदारनाथ सिंह, ज़मीन पक रही है, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली, सं.2014, पृ.15-16। **20.** केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, दिल्ली, सं.2019, पृ.48-50। **21.** केदारनाथ सिंह, ज़मीन पक रही है, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली, सं 2014, पृ. 44।

द्वारा-श्री जसवंत सिंह बिष्ट,
प्राथमिक विद्यालय के निकट, भावना ज्वेलर्स,
अगस्त्यमुनी, जिला-रुद्रप्रयाग-246421
(उत्तराखण्ड)
मो. 8006120838

●

संसार एक महान पुस्तक है जिसमें वे लोग जो कभी घर से बाहर नहीं निकलते, केवल एक पृष्ठ पढ़ जाते हैं।

- अगस्टाइन

पुस्तक जागृत एवं सजीव देवता है उसकी सेवा करके तत्काल वरदान प्राप्त किया जा सकता है।

- रामनरेश त्रिपाठी

जैनेन्द्र के उपन्यासों में वैयक्तिक सत्य

डॉ. आशा बिष्ट

जैनेन्द्र कुमार उन साहित्यकारों में से हैं। जो अपनी विशिष्ट चिन्तन धारा के कारण भारतीय साहित्य में प्रसिद्ध हुए है। उनका साहित्य सत्यानुप्रेरित है और विशिष्ट चिन्तन धारा का प्रतिफल है। उनके साहित्य में विभिन्नताएँ अधिक हैं। क्योंकि जैनेन्द्र सामाजिक परम्पराओं को महत्व देते हैं। उनको तोड़ते नहीं हैं। जो उनके उपन्यासों में देखने को मिलता है।[1] जैनेन्द्र को हिन्दी का प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार माना गया है। मनोविज्ञान से अभिप्राय मन के विज्ञान से है। मन के द्वारा ही मनुष्य की प्रत्येक क्रिया प्रचालित होती है। क्योंकि मानव पर मन का नियन्त्रण रहता है। मनुष्य का हृदय तो भावनाओं का भण्डार है। उपन्यास का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य के वास्तविक सत्य स्वरूप का चित्रण करना है। उपन्यास में मनुष्य और उसके समाज का चित्रण रहता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अधिकांश पात्रों का व्यक्तित्व असाधारण कोटि का रहता है। जैनेन्द्र के उपन्यासों में मनोभूमि का प्रत्यक्षीकरण देखने को मिलता है।[2]

जैनेन्द्र उपन्यास को 'सत्य का शोध' मानते हैं। वे हिन्दी ही नहीं बल्कि भारतीय कथा साहित्य और विचार जगत में सर्वस्वीकृत विशिष्ट साहित्यकार रहे हैं। उपन्यास हो या कहानी उसे जैनेन्द्र ने नये धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। जैनेन्द्र हिन्दी में सर्वथा पहले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने उपन्यास को नई भावभूमि दी, भाषा दी। नये शिल्प तथा नई तकनीक में उसे ढाला।[3] भाषा के प्रति जैनेन्द्र के सिद्धान्त अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने उपन्यासों में शब्दों का प्रयोग बिना किसी भेदभाव से किया है। उनकी भाषा साधारण कोटि की नहीं है। बल्कि यह मानस की स्फूर्त चेतना को अभिव्यक्त करने में पूर्णतया सक्षम है। क्योंकि जैनेन्द्र की भाषा मन की भाषा है। बुद्धि की भाषा उनको रास नहीं आती है। वे भाषा के स्वरूप के लिए चिन्तित हैं।[4]

जैनेन्द्र कुमार मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की कोटि में आते हैं। उन्होंने कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से एक नया मोड़ देने वाले अपने उपन्यासों में एक नये मार्ग का निर्माण किया है। उनकी दृष्टि स्थूलता की ओर न जा कर सूक्ष्मता की ओर उन्मुख है। जैनेन्द्र जी व्यक्ति को महत्व देते हैं और वे जिन व्यक्तिवादी पात्रों की सृष्टि करते हैं, वे अपनी

विषेशताओं को लेकर एक विशिष्ट वर्ग खड़ा करते हैं। उनके उपन्यासों में पात्र बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी अधिक हैं। जैनेन्द्र ने अनेक उपन्यासों की सृष्टि की है। जिनके माध्यम से उनके विचारों को जाना जा सकता है। उनके प्रमुख उपन्यासों में - सुनीता-सन्-1936, कल्याणी-सन्-1940, सुखदा-सन्-1902, व्यतीत-सन्-1953, त्यागपत्र-सन्-1957, विवर्त-सन्-1953, जयवर्धन-सन्-1950, परख-सन्-1929 आदि हैं।

जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में मानव मन के भीतर चलने वाली सूक्ष्म भावनाओं और विचारों का चित्रण किया है। इन उपन्यासों में प्रेम विवाह, सामाजिक समस्याएं, संघर्षों को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से पेश किया है। 'सुनीता' उपन्यास में एक विवाहित महिला के प्रेम और मोहभंग की कहानी है। सुनीता, श्रीकांत तथा हरिप्रसन्न जैसे पात्रों को हम असाधारण कोटि में रख सकते हैं। श्रीकान्त जैसा व्यक्ति जो अपने मित्र हरिप्रसन्न के लिए अपनी पत्नी तक को उसे समर्पित कर देता है। तीनों पात्रों के चरित्र चित्रण में लेखक ने अत्यन्त जागरूकता दिखाई है।[5] सुनीता एक भारतीय नारी है। फिर भी व्यापक उद्देश्य के लिए वह आत्म समर्पण के माध्यम से हरिप्रसन्न की काम ग्रन्थी का भामन करना चाहती है। यह उपन्यास दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों उद्देश्यों से संयुक्त है। सुनीता उपन्यास में नवीनता के प्रति आग्रह दिखाई देता है। सुनीता उपन्यास में घर और बाहर की समस्या ही प्रधान होकर आई है। उपन्यासकार के मन में एक प्रश्न उठा जिसके कारण उन्हें इस कथावृत्त की आवश्यकता हुई।

'सुनीता' उपन्यास में हरिप्रसन्न को काम कुण्ठा से ग्रस्त दिखाया गया है और क्रान्ति के नाम पर उसके द्वारा स्वीकार की गयी हिंसा को स्वरति व अन्य के प्रति घृणा (अर्थात प्रेम भाव) माना गया है। 'सुनीता' को आत्मदान द्वारा उसमें प्रेम जगाने व अहिंसा में दीक्षित करने का कार्य सौंपा गया है।[7] 'सुनीता' उपन्यास में दार्शनिक मनोवैज्ञानिक सभी दृष्टियों से काफी लिखा गया है। जैनेन्द्र ने पात्रों के मानसिक द्वंद्वों भावनाओं द्वारा विचारों को विस्तार रूप से चित्रित किया है। इस उपन्यास में पात्रों के मन में चलने वाली इच्छायें, भावनाओं और आपसी मानसिक द्वंद्वों को बहुत ही सूक्ष्मता से जैनेन्द्र जी ने चित्रित किया है। मनोवैज्ञानिक उलझनों के बीच के संघर्षों को भी दिखाया है। 'सुनीता' उपन्यास की भाषा और शैली भी मनोवैज्ञानिक है। उपन्यास में मानसिक जीवन का गहनता से विश्लेषण जैनेन्द्र द्वारा किया गया है।

'कल्याणी' उपन्यास में जैनेन्द्र ने 'कल्याणी' नाम की महिला के जीवन के माध्यम से आधुनिक भारतीय समाज में नारी की भावनायें स्थिति, कुंठा, द्वंद्व, अस्तित्व का संकट, आत्मपीड़ा आदि पहलुओं को मनोवैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत किया है जिससे पाठक कल्याणी की भावनाओं और संघर्षों को समझ पाते हैं। जैनेन्द्र जी ने नारी के उभरते व्यक्तित्व और परम्परागत पुरुष प्रधान संस्कृति में उसके चल रहे शोषण के बीच की टकराहट और संवेदशील नारी-मानस पर उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव, 'कल्याणी' उपन्यास में प्रस्तुत किया है। कल्याणी का विवाह ऐसे व्यक्ति से होता है जो इसे पसन्द नहीं था। इसलिए 'कल्याणी' के मन में कुंठा और द्वंद्व पैदा होती है। जैनेन्द्र अपने उपन्यासों में पात्रों के मन की गहराइयों को झांकते हैं। उनके विचार, भावनायें इच्छायें को बड़ी सूक्ष्मता से व्यक्त करते हैं। जैसे कल्याणी के मन की इच्छाओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से लोगों के सामने रखा है। भारतीय समाज में स्त्री को विशिष्ट स्थान प्राप्त है, वह बहुत जल्दी ख्याति भी त्वरित बन सकती है और सामाजिक लांछन का लक्ष्य भी त्वरित बन सकती है। जब कल्याणी को डॉ. असरानी ने पीटा और कमरे में बन्द रखा तब सामाजिक कार्यकर्ता

स्त्रियों की ओर से कल्याणी को कोर्ट में पति के विरोध में जाने के लिए उकसा भी रहे थे और यह भी कह रहे थे कि स्त्री को राह पर रखने के काम से पुरुष कैसे बच सकता है। 'कल्याणी' के पति महोदय जिस प्रकार से 'कल्याणी' के साथ व्यवहार कर रहे थे। उसमें दुष्टता से अधिक पुरुष के परम्परागत संस्कारों का हिस्सा अधिक प्रबल था। 'कल्याणी' के स्वभाव में मृत्यु तत्व का स्पष्ट खिंचाव नजर आता है। लेकिन यह मनोवैज्ञानिक सत्य कल्याणी के जटिल, अप्रतिम व्यक्तित्व के माध्यम से जैनेन्द्र ने रूपायित किया है। 'कल्याणी' के बीच-बीच में जीवन सार्थकता, निरर्थकता के प्रति, पश्चिमी सभ्यता के प्रति, भारतीय संस्कृति के प्रति भी काफी कुछ कहा गया है। इस उपन्यास में जैनेन्द्र ने 'कल्याणी' को एक आधुनिक महिला के रूप में चित्रित किया है। वे समाज में महिलाओं की स्थिति और उसके आन्तरिक संघर्षों को दर्शाना चाहते हैं।[8]

'व्यतीत' उपन्यास में जैनेन्द्र ने सामाजिक दबावों और व्यक्तित्व की इच्छाओं के बीच फंसे पात्रों की मानसिक उलझनों को दर्शाया है। उपन्यास 'व्यतीत' में पात्रों की मनोवैज्ञानिक स्थिति को समझने के लिए भावनाओं का संघर्ष, चेतन और अवचेतन मन, सामाजिक दबाव, व्यक्तिगत अनुभव की प्रतिक्रियाओं को दर्शाया है। 'व्यतीत' उपन्यास में एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो अपने जीवन में विभिन्न परिस्थितयों से गुजरती है। उसके मन में कई तरह के भावनात्मक उतार-चढ़ाव आते हैं। वह अपने पति, प्रेम और सामाजिक अपेक्षाओं के साथ संघर्ष करती है।[9]

'परख' उपन्यास हिन्दी का पहला मनो-विश्लेष्णात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रेम और विवाह की पारम्परिक अवधारणाओं पर सवाल उठाए हैं। इसमें व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच संघर्षो को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से दिखाया गया है। उपन्यास में पात्रों को पहचान और जीवन के अर्थ की तलाश करते हुए दिखाया गया है। जैनेन्द्र के इस उपन्यास "परख" में सव्यधन, कटटों, बिहारी का जो त्रिकोण बनता है वह कुछ निश्चित मनोवैज्ञानिक युक्तियों पर केन्द्रित है। सत्यधन और कट्टों के बीच सहज सम्बन्ध नहीं हो पाता तो दूर की गरिमा उनकी मानसिक बनावट को हर समय प्रभावित करती है। उधर कट्टों को ध्यान में रखते हुए बिहारी के पिता ने सही समय पर यह सीधे पकड़ने वाला प्रश्न पूछा था कि क्या तुम उस लड़की से प्रेम करते हो! उन्होंने यह व्यंग्य भी उचित ही किया था कि आधिपत्य की आकांक्षा ही तो प्रेम के मूल में निवास करती है। 'परख' से ही जैनेन्द्र में मनोवैज्ञानिक युक्तियों-तात्पर्यों का प्रायः समेत उपयोग दिखाई देता है।"[10]

"त्यागपत्र" उपन्यास को जैनेन्द्र ने कल्पना पर खड़ा किया है जिसमें नारी के अतृप्त जीवन की करुण कहानी है। वे कहते हैं कि हमारी कल्पना जहाँ तक जाती है। सत्य भी उससे आगे जाता है क्योंकि उपन्यास स्वाभाविक बनाने के लिए नहीं है, वह तो एक प्रभाव पैदा करने के लिए होता है जिसकी रचना इसलिए स्वाभाविक बनाई जाती है कि वह अपने मन पर थोड़ी देर के लिए उतर जाये।[11] "त्यागपत्र" उपन्यास में मृणाल एक प्रगतिशील सोच रखने वाली युवती है जो तात्कालीन समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं से समझौता नहीं करती है, वह अपने तरीके से जीवन जीने का फैसला करती है। इस उपन्यास में जैनेन्द्र ने सामाजिक बन्धनों रुढ़ियों और व्यक्ति की स्वतन्त्रता जैसे विषयों पर प्रकाश डाला है। त्यागपत्र में जीवन की सार्थकता को लेकर कुछ अहम प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं। जैनेन्द्र एक सूक्ष्म चिन्तन के साथ अत्यन्त सजग परंतु सहज उपन्यास शिल्पी हैं। वे सूक्ष्म चिन्तक के रूप में विख्यात हैं। उनका कलाकार चिन्तक से कम महान नहीं है।[12]

'सुखदा' उपन्यास में कुछ विशेष मनोवैज्ञानिक

समस्याएं उभरती है और पात्रों के मन की गहराइयों में झांकने की कोशिश की गई है और उनके आन्तरिक संघर्षों भावनाओं और विचारों को बहुत ही बारीकी से चित्रित किया गया है। इसमें एक आधुनिक नारी की मनोदशा को व्यक्त किया है। सुखदा एक धनी घराने की महिला है। वह अपने जीवन में खालीपन महसूस करती है। उसने पारम्परिक नैतिकता को चुनौती दी है। जैनेन्द्र ने घटनाओं के बजाय सुखदा के मन में चलने वाले विचारों और भावनाओं को अधिक महत्व दिया है, क्योंकि सुखदा के आरम्भिक विकास में ही असाधारणता की गांठ थी। इसी गांठ की परिस्थितियों ने जटिलतर बनाया। तृप्ति सुखदा में थी भी नहीं। अहं की मांग ने उसे क्रान्तिकारियों का सम्पर्क दिया। इन स्थितियों के बावजूद उस पर पति का निर्बाध स्नेह था जिसके मनोवैज्ञानिक कारणों का अनुमान किया जा सकता है।

'जयवर्धन' उपन्यास में जैनेन्द्र ने पात्रों के मनोविज्ञान को समझने और उसे व्यक्त करने का प्रयास किया है। इसमें पात्रों के द्वंद्व भावनाओं और मानसिक उलझनों को उजागर किया है। इला और जयवर्धन अपने जीवन के द्वंद्वों से जूझते हैं। जयवर्धन की बनावट में मनोवैज्ञानिक समस्याओं से अधिक राजनीतिक समस्याओं का योग है। 'इला' का अपने जीवन के अधूरेपन से जूझना मनोवैज्ञानिक द्वंद्वों को दर्शाता है। यह उपन्यास मानसिक उलझनों को उजागर करता है। क्योंकि जैनेंद्र अपने विचारों, अपने कथानक और चरित्रों के इर्द-गिर्द अक्सर एक मनोवैज्ञानिक रहस्य बुनते हैं।[13]

जैनेन्द्र कुमार ने अपने उपन्यासों के सीमित कलेवर में अधिक आशय भरा है। उपन्यास मनोवैज्ञानिक होने के कारण व्यक्ति के मानसिक द्वंद्व का गहरा चित्रण उनमें हुआ है। उनके उपन्यासों में पात्रों के आन्तरिक जगत की व्यथा भावों के अनुसार साकार हुई है। उनके साहित्य में मुख्य स्वर मानव जीवन की सहजता और सत्य का मुखरित हुआ है। जैनेन्द्र के उपन्यास परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, जयवर्धन आदि सोद्देश्य हैं। आत्मनिष्ठा को मनोविज्ञान का आधार दिया गया है जिससे परिस्थितियों के परिवेश में भी व्यक्ति का स्थान ऊँचा और अडिग रहा है। जैनेन्द्र ने जिस मनोवैज्ञानिक धारा को उठाया है उसे अंत तक निभाने का कार्य उन्होंने किया है। उनके सभी उपन्यासों में व्यक्ति के बाह्य चित्रण की अपेक्षा आन्तरिक चित्रण को अधिक बल मिला है।

मानव जीवन की विराट भूमि को समेटने का कार्य जैनेन्द्र के उपन्यासों में हुआ है। मानव जीवन की गहरी रुचि में विश्वास रखकर उनके उपन्यासों का सृजन हुआ है। उनके साहित्य का प्रधान लक्ष्य आदर्शवादी रहा है। जैनेन्द्र के उपन्यासों की मनोवैज्ञानिकता असाधारण है। लेकिन मानव की गहन गुत्थियों को सुलझाने का काम उनके उपन्यासों में पढ़ने को मिलता है। उपन्यासों में गिने-चुने ही पात्रों के माध्यम से अपने उपन्यास जगत को जैनेन्द्र जी ने सँवारा है। मानव जीवन की दैनिक समस्याएँ उनके उपन्यासों में आयी हैं। रहस्य और रोमांस जैनेन्द्र के उपन्यासों की विशेषता है। पात्रों का व्यक्तित्व को जैनेन्द्र जी ने मनोविज्ञान दर्शन से उकेरा है।[14]

निष्कर्ष - रूप से हम कह सकते हैं कि जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में धर्माडम्बर तथा अन्धविश्वासों, मान्यताओं का खुलकर विरोध किया है। जैनेन्द्र जी की भाषा मन की भाषा है। उनके उपन्यासों में आन्तरिक जगत और यथार्थ का चित्रण देखने को मिलता है। उन्होंने विभिन्न विषयों का विश्लेषण करके जीवन के विभिन्न पहलुओं को खोज निकाला है। हिन्दी साहित्य में उनका यह योगदान भुलाने लायक नहीं है। वे उन साहित्यकारों में से हैं जो अपनी विशिष्ट चिन्तन धारा के कारण भारतीय साहित्य में प्रसद्धि हुये।

सन्दर्भ

1. डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर- जैनेन्द्र और उनका साहित्य-पृ.सं.-105। **2.** डॉ. बलराज सिंह राणा--उपन्यासकार जैनेंद्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन-पृ.सं.-29-32। **3.** ज्योतिश जोशी--जैनेन्द्र और नैतिकता-पृ.सं--40। **4.** डॉ. राजेन्द्र मोहन--जैनेन्द्र और उसका साहित्य--पृ.सं.--106। **5.** डॉ. बालकृष्ण गुप्ता--हिन्दी उपन्यास सामाजिक सन्दर्भ--पृ.सं.--86। **6.** चन्द्रकांत वांदिवडेकर---जैनेन्द्र के उपन्यास में मर्म की तलाश--पृ.सं--41। **7.** नवल किशोर--आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवक्ता--पृ.सं.--55। **8.** चन्द्रकांत वांदिवडेकर--जैनेन्द्र के उपन्यास में मर्म की तलाश--पृ.सं.--31-38। **9.** जैनेन्द्र कुमार--विकिपीडिया। **10.** परमानन्द श्रीवास्तव--जैनेंन्द्र के उपन्यास--पृ.सं.--112। **11.** डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर--जैनेन्द्र एक अध्ययन--पृ.सं.--126--127। **12.** चन्द्रकान्त वांदिवडेकर--जैनेन्द्र के उपन्यास में मर्म की तलाश--पृ.सं.-41--48। **13.** परमानन्द श्रीवास्तव-- जैनेंन्द्र के उपन्यास--पृ.सं.--113--116। **14.** डॉ. बसन्त सुर्वे--जैनेन्द्र के उपन्यासों का अनुशीलन--पृ.सं.--15-19।

हिन्दी विभाग- बी.जी.आर परिसर पौड़ी
हे. न. ब. ग. केन्द्रीय वि. वि.
श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)-246174
मो. 9897448213, 9997423271
ई.मेल.-ashabisht976@gmail.com

●

कर्म पूजा बने

घर से मंदिर है बहुत दूर
चलों यों कर लें,
किसी रोते हुए बच्चे को
हंसाया जाये।

कवि की इस सादगी से कही बात यदि सध जाए तो जीवन ही बदल जाए।

हम पूजा, आराधना या नवधाभक्ति के विविध रूपों में अपने को खोए, भूले रहते हैं और भूल जाते हैं– सामने हैं– पूजा के जीवंत स्वर्णिम अवसर। इनको यदि अपना लें तो कहीं जाने की जरूरत नहीं।

पहला काम है– अपने को भी हंसाना। अपने को खुश रखना प्रभु-सेवा है। घर गृहस्थी में प्रभु का दर्शन करना, पास पड़ोस के दुख-दर्द में शामिल होना, राह भूले लोगों को राह बताना, किसी निराश व्यक्ति को दो मीठे बोल सुनाना, किसी गिरे को उठाना, किसी अच्छे काम के लिये किसी की पीठ थपथपाना– ये भी भगवद्‌सेवा के विविध रूप हैं।

हमारे सभी काम पूजा हैं– शर्त है– इनमें अहंकार न हो, इनमें पाने का भाव न हो, अपने को लुटाने का रस भरा हो। जो भी हम करें– यह भाव से करें– 'स्वाहा' का स्वर निनाद हो– 'सु-आहा!' चलो यों कर लें।

- अक्षयचंद्र शर्मा

दक्खिनी हिंदी के साहित्यकार मुल्ला वजही का 'सबरस' : एक विवेचन

डॉ. नूरजहाँ रहमातुल्लाह

शोध-सार : प्राचीन काल से भारत बहुल भाषा और संस्कृतियों का संगम स्थल रहा। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अप्रभ्रंश और अवहट्ट से उत्पन्न होकर कालांतर में परिष्कृत एक-दूसरे के साथ आदान-प्रदान होकर विभिन्न बोलियां उत्पन्न हुई। भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषायों के समन्वय से अनेक भाषा-बोलियों का विकास हुआ। इसी से हिंदी के अनेक रूप हैं, उनमें एक है दक्खिनी हिंदी। यह 14वीं से 18वीं शताब्दी के दौरान बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही जैसे दक्कन के मुस्लिम शासकों के संरक्षण में विकसित हुई। खड़ीबोली, अरबी, फारसी, मराठी, तेलुगू, कन्नड़ के समन्वय से जो नई भाषा बनी वही दक्खिनी कही जाती है। दक्खिनी के अन्य नाम हिंदी, हिन्दवी, दकनी, दखनी, देहलवी, गूजरी, हिन्दुस्तानी, जबाने हिन्दुस्तानी इत्यादि हैं। हिन्दी साहित्य का आरम्भिक काल दक्खिनी हिन्दी साहित्य है। जनसाधारण में इसका प्रचार-प्रसार हुआ तथा राजदरबारों में भी इसका सम्मान हुआ। मुल्ला वजही दक्खिनी साहित्य के एक महान कवि हैं। कुली कुतुबशाह के दरबारी कवि थे, राजा को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने राजा की प्रेम कहानी पर आधारित कुतुबमुश्तरी की रचना की। इन्होंने ही अपनी रचना सबरस के द्वारा दक्खिनी हिन्दी साहित्य को नवीन गौरव अस्मिता प्रदान की। गद्य-पद्य मिश्रित अनूठी शैली के कारण दक्खिनी साहित्य में इसका सर्वोच्च स्थान है। **बीज शब्द :** दक्खिनी, हिन्दी, भाषा, साहित्य, मुल्ला वजही।

प्रस्तावना - भाषा मनुष्य जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। मनुष्य अपनी भावों, विचारों और अनुभूति की भाषा के माध्यम से प्रकट करते हैं। साहित्यकार की चितंन-मनन करने की अभिव्यक्ति भाषा ही होती है। साहित्य मानव समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। दक्खिनी भारतीय भाषा है। हिंदी, उर्दू, दखनी, हिदुस्तानी आदि भाषाएँ आर्य-भाषा परिवार की भाषाएँ हैं। दक्खिनी हिंदी की लिपि फारसी और देवनागरी दोनों हैं। दक्षिण के अधिकांश मुसलमानों के घरों में और हिन्दुओं की कई जातियों की यह मातृभाषा रही है। दक्खिनी हिंदी की अपनी एक साहित्यिक परंपरा थी। अनेक विद्वानों ने इसे परिभाषित किया है। डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार- 'दखनी आर्य भाषा हिंदी का ही एक रूप है।"सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार- 'केवल लिपि को छोड़कर यह (दक्खिनी) सारा साहित्य बिल्कुल हिंदू परंपरा का उसी प्रकार अनुकारी है जैसे उत्तरी भारत में आरंभिक

अवधी भाषा में रचित मलिक मोहम्मद जायसी का पदमावत।"[2] वस्तुतः अरबी फरसी बोलने वालों का हिंदी भाषिकों के साथ जो संबंध हुआ उसी से दक्खिनी हिंदी का जन्म हुआ। दक्खिनी हिंदी भाषा साहित्य का विकास प्रथमतः पद्य में हुआ। कुछ काल बीतने के बाद गद्य रचना का आरंभ हुआ। दक्खिनी गद्‌य की आरंभिक रचनाओं में हजरत ख्वाजा बन्दानवाज की 'मेराजुल आशीकीन' और 'हिदायत-नामा' महत्वपूर्ण हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार मेराजुल आशीकीन दक्खिनी गद्य की सर्वप्रथम रचना है। दक्खिनी की सभी रचनाओं का धार्मिक महत्त्व अधिक होता रहा और साहित्यिक महत्त्व कम। क्योंकि साहित्य-रचना की अपेक्षा सूफी-सिद्धान्त प्रतिपादन ही उनका उद्देश्य रहा है।

दक्खिनी भाषा के गद्य साहित्य के रूप में सबरस का साहित्यिक महत्व अधिक है और सबरस गद्य का पहला साहित्य है। वजही की मातृभाषा फारसी होने के कारण उसके साहित्य रचना का प्रथम आविष्कार फारसी में ही हुआ। उस समय फारसी एक परिष्कृत भाषा थी। कुतुबशाही के दरबार में दक्खिनी हिंदी भाषा का प्रभाव ज्यादा था और जन-मानस की भाषा भी दक्खिनी थी इसीलिए वजही ने भी अपने लेखनी भाषा दक्खिनी हिंदी को ही चुना। बोलचाल की भाषा दक्खिनी भाषा को साहित्यिक भाषा का गौरव प्रदान करने का सर्वप्रथम श्रेय वजही ने 'सबरस' के माध्यम से दिया। सबरस के आरंभ में वजही कहते हैं कि- 'फरहाद होकर, दोनों जहाँ से आजाद होकर, दानिश के तीशे सुँ पहाड़ाँ उलटाया तो यो शीरी पाया तो नवी बाट पैदा हुई तो इस बाट आया।"[3]

सबरस वजही की सर्वश्रेष्ठ कृति है। सबरस का कथानक प्रतीकात्मक है, उसके पात्रों को भी प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। सबरस में सूफी साधना पद्धति को प्रतिपादित किया गया है। सबरस में एक प्रेम कहानी को प्रतीकों के माध्यम से प्रकाश किया है। यहाँ सीस्तान नाम से प्रसिद्ध शहर का राजा अक्ल था और उसके पुत्र का नाम दिल था। एक दिन शाही दरबार में दिल के सामने एक दरबारी कहता है कि दूर देश की राजकन्या हुस्न के बारे में पता चलता है, तभी राजकुमार दिल उसे मिलने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। अंत में राजमहल त्याग कर हुस्न को मिलने चले जाते हैं। बहुत बाधा विघ्नता के बाद हुस्न दिल को मिलते हैं। दिल को आबेहयात की तलाश थी। दिल और हुस्न का मिलन हो जाता है और विवाह के साथ कथानक समाप्त होता है। यहाँ सूफी साधना पद्धति और मस्नवी शैली की परंपरा के अनुरूप वजही ने ग्रंथ को लिखा है। गद्य-पद्य मिश्रित शैली में लिखा हुआ सबरस एक परिपूर्ण उपन्यास है। सबरस में भाषाई वैविध्य देखा जाता है। दक्खिनी स्थानीय बोलचाल की भाषा होने के कारण स्थानिक विविध भाषाओं के मेल और प्रभाव से बनी है। वजही के सबरस पर अनेक भाषाओं जैसे मराठी, गुजराती, ग्वालियरी, ब्रज, तेलुगु का प्रभाव देखने को मिलता है।

सबरस पर मराठी भाषा का प्रभाव - मराठी भाषा का प्रभाव सबरस पर सबसे ज्यादा है। इसीलिए सबरस में अनेक जगह पर मराठी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे- आधार (सहारा), अधर (होठ), इस्तरी (औरत), परगट (जाहिर), धीर (हिम्मत), कोट (किला), मानक (मोती), लोन (नमक) इत्यादि। शब्दों के प्रयोग सबरस में अलग-अलग जगह पर होता है। जैसे - 1. जिस औरत ने इतनी झल खाई, उनने आखिर मर्द की गंवाई। 2. खाने में उड़या लोन, अताल तुम्ही कौन, हमी कौन। इस तरह से वजही ने अनेक स्थलों पर मराठी भाषा का प्रयोग किया है। मराठी भाषा के प्रभाव के बिना दक्खिनी भाषा अधूरी है।

सबरस पर गुजराती भाषा का प्रभाव - गुजराती भाषा प्रभाव भी सबरस में अधिक मात्रा में देखा जाता है। दक्खिनी के कवियों में से गुजरात प्रदेश में रहने वाले वजीहुद्दीन गुजराती तथा शाह बहाऊद्दीन जानम जैसे सूफी कवियों ने अपनी भाषा

को गूजरी कहा है। सबरस में गुजराती भाषा के प्रभाव को वजही ने अरबी और फारसी भाषा के शब्दों की तरह अनेक गुजराती शब्दों के उच्चारण-रूप में थोड़ा परिवर्तन करके उन्हें दक्खिनी भाषा के स्वभावानुसार ढालने का प्रयत्न भी किया है। जैसे बड़ों (बड़ा), बूढ़ों (बूढ़ा), आडो (आडा), बार (बाहर), दई (दही), द्द (दूध) इत्यादि।

सर्वनाम में अलग-अलग शब्दों का व्यवहार किया जाता है। सबरस में इसी रूप में लिया है। हाम के लिए हमारों, तुम्हारा के लिए तुम्हारों आदि। वजही ने दक्खिनी भाषा से परिपाटि की अपने लेखन में व्यवहार किया है। सबरस बहुवचन के लिए आँ में प्रयोग किया है- खुदा के दोस्ताँ ने बोले। फलाँ, फुलाँ, गुलाँ झाड़ाँ आदि। सबरस का भाषा में हरियाणी भाषा का प्रभाव भी देखने को मिलता है। जैसे- गमजे ने नजर कुँ अपने घर ले गया। कर्म के लिए कर का प्रयोग भी सबरस में अनेक रूपों में हुआ है। जैसे- अपने काम फतह हुआ कर भौत खुशहाली पाए। वजही ने पंजाबी भाषा का प्रयोग कम मात्रा में किया है। दक्खिनी भाषा के स्वरूप के अनुसार सबरस में भी शब्दों के पुल्लिग और स्त्रीलिंग के प्रयोग में कोई विशेष भेद नहीं किया गया है। अनेक स्थानों में स्त्रीलिंग शब्दों को पुलिंग के रूप में प्रयोग किया है- मौत, सबर, आग, मुलाकात, पुकार आदि।

सबरस पर फारसी भाषा का प्रभाव - वजही के समय में फारसी भाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। उस समय दक्खिनी भाषा संक्रमण की अवस्था में थी। वजही ने फारसी भाषा को सीमित रूप में ही ग्रहण किया है, जिससे दक्खिनी भाषा का सौन्दर्य निखरा हुआ है। वजही ने अनेक जगहों पर फारसी शब्दों के मूल रूपों का प्रयोग किया है और कुछ जगह पर को परिवर्तन कर उन शब्दों को दक्खिनी भाषा के स्वभाव के अनुरूप बनाने का प्रयास किया है। सबरस पर केवल फारसी शब्दों के प्रभाव की ही बात नहीं है बल्कि अनेक अवसरों पर वाक्य-रचना पर फारसी शैली का प्रभाव है। जैसे कि काफेराँ जबूँ हुए, खिराज दाये, दीन कुबूल किये। दक्खिनी भाषा उस समय की आम जनता की बोल-चाल की भाषा होने के कारण अरबी-फारसी शब्दों का लेखन भी इन दोनों भाषाओं के शुद्ध लेखन के अनुसार न होकर बोलचाल में उच्चारण के अनुरूप ही है।

वजही ने सबरस में अनेक स्थलों पर सुंदर आम बोलचाल के मुहावरों का प्रयोग करके अपनी भाषा को जनसाधारण के लिए सुलभ और सरस बनाया है। इन मुहावरों में जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव और सच्चाई मुखरित हुई है। मुहावरों की रसमयता से समस्त सबरस व्याप्त है। जैसे- क्या खाला का घर, शकर की छुरी, शरम हुजूरी। भाव, अर्थ और शब्द-योजना की दृष्टि से उनमें विशिष्ट प्रभाव और सौन्दर्य है जिससे वजही की नव-निर्माण क्षमता के साथ विचारों को उच्चता, जीवन का गहरा अनुभव तथा नैतिक बोध और विशिष्ट अभिव्यक्ति क्षमता का प्रमाण मिलता है। सबरस में वजही का चिंतन है कि मनुष्य के जीवन में धैर्य और हिम्मत का बड़ा महत्त्व है। मनुष्य को बड़प्पन सहज प्राप्त नहीं हो तो, उसे कठोर परिश्रम द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। सच्चा मित्र ईश्वर होता है। सबरस में वजही ने अनेक स्थलों पर शब्दों की दुहरावट करके शब्दों में चमत्कार उत्पन्न किया है, जैसे- ठारें-ठारें, बोल-बाला, पातें-पात आदि। मुल्ला वजही ने अपनी भाषा को अधिक काव्य-रसमय और अर्थ-गर्भ बनाने के लिए अरबी और फारसी की उक्तियों की तरह जनमानस में प्रचलित दोहों का प्रयोग भी किया है - *'जो लगन तु सहस बल, जो भर जन तु मास। ये सीना खखिया क्यूँ, खे सट तन का घास।'*[4] जब तक शरीर में बल और तन में मास है तब तक अपने सीने में हिम्मत धारण करना चाहिए। सबरस की भाषा सरस, सजीव, सुंदर, भावपूर्ण और अर्थपूर्ण है, वजही ने गद्य-पद्य मिश्रण करके सबरस को अमर बना दिया।

सबरस की शैली - भाषा और शैली दोनों का

निकटतम संबंध होते हुए भी शैली का साहित्यिक दृष्टि से विशिष्ट स्वतंत्र और महत्त्वपूर्ण है। किसी भी साहित्य के साहित्यिक मूल्यांकन की अभिव्यक्ति कौशल का अंदाजा उसकी शैली के माध्यम से किया जाता है। वजही से पहले दक्खिनी भाषा बहुत परिनिष्ठित नहीं थी। दक्खिनी काव्य का तो समाधान हो चुका था, मगर गद्य रचना की सिर्फ शुरुआत हुई थी। हजरत ख्वाजा बन्दनवाज द्वारा रचित मेराजुल आशाीकीन को दक्खिनी की पहली गद्य रचना माना जाता है। इसके बाद की दक्खिनी गद्य की प्रमुख रचनाओं में निशातुल आशीकीन, जलतरंग, गुलबाग और कलेमतुल हकाएक का उल्लेख महत्वपूर्ण है। कहा जाता है कि इनमें प्रस्तुतिकरण की सादगी और बोलचाल की शैली है। सबरस का शैली की दृष्टि से दक्खिनी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वजही सबरस के आरंभ में सबरस को सरताज ग्रंथ की उपमा देते हुए कहते हैं कि- 'किताब सब किताबों का सरताज। सब बातां का राज, हर बात में सौ-सौ मेरज, युँ रंग-रंग के फूल, सब फूल मकबूल, सबके भाते यो फूल, दायम ताजे, हरगीज नही कुमलाते, अगर किसी में सुरवन शनासी हौर असरार दानी है तो यो किताब गंजे अर्शुल मआनी है।'[5]

वजही अपनी लिखनी सबरस में अलग-अलग तरह के अनूखी शैली का प्रयोग किया है। वजही के साहित्य का सभी गुण जैसे एक राज की तरह है क्योंकि उन्होंने अपनी हर बात को विविधता और विचित्रता के साथ प्रस्तुत किया है। सबरस में प्रमुख रूप हमें पाँच शैलियाँ देखने को मिलती है -

शब्दों का पुनरुच्चार करना - वजही की यह एक खास विशेषता है कि उन्होंने भाषा और शैली दोनों के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है कि अनेक जगहों पर पुनरुच्चार से न केवल अर्थ में ही प्रभाव उत्पन्न किया है बल्कि शैली में भी विशिष्टता का परिचय दिया है। उदाहरण के रूप में- 'तनहाई दाना का खुलासा है, तनहाई दाना का खासा है, तनहाई में दाना कुँ भौत हासिल है। तनहा वोईच जो कोई बासिल है, कामिल है। नादान ते यक तल तनहा रहा ना जासी। नादान कुँ हरगिज तनहाई ना भासी। अगर तु दाना है, नादान सुँ नको मिल, खलल में पड़ेगा दिल।'[6]

बात में बात पैदा करना - वजही ने सबरस में अपनी बहुविज्ञता, भाषा पर अधिकार और अनूखी प्रस्तुतीकरण के निराले संकेत प्रस्तुत किया है। इस अनूखी प्रस्तुती की तत्कालीन समय में भी वजही को सराहा गया था, शैली की बात साहित्यिक रूप से महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण स्वरूप - 'यो मुहब्बत के प्याले के चाले थे। यो मुहब्ब की बेखुदी के उलाले थे। बन्दा अगर कुँ समझकर खुदा कदे तो पतियाने की बातत है या झूठ है या दीवाना है या मस्ती की धात है। दीवाने कुँ, झुठे कुँ, मस्त कुँ, समझा जाता है, न के दीवाने पर झूठे पर खून लाजिम आता है।'[7]

गद्य और पद्य का मिश्रण - वजही की सबरस लेखनी की सब से बड़ी खासियत है गद्य-पद्य का मिश्रण की शैली। वजही अपने ग्रंथ के आरंभ में कहते हैं कि- 'आज लगन कोई इस जहान में हिन्दुस्तान में हिन्दी जबान सुँ, इस लताफत इस छन्दाँ सुँ, नजम हौर नसर मिलाकर, गलाकर युँ नै बोल्या। इस नबात कुँ, युँ कोई आबेहयात कुँ नैं, घोल्या।'[8] सबरस के आलोचक विद्वानों ने सबरस के स्रोत संबंधी आक्षेप में उसके कथानक को दस्तूरुल ऊश्शाक का अनुकरण माना है, यह कथानक पुरानी परिपाटि के अनुरूप एक प्रेम कहानी ही माना है। मगर सभी आलोचकों ने यह स्वीकार किया है कि गद्य और पद्य मिश्रण द्वारा एक नयी शैली का निर्माण वजही ने किया है जो उनसे पहले किसी भी दक्खिनी साहित्यकार ने नहीं किया था। कुछ विद्वानों ने कहा कि दक्खिनी हिंदी के अतिरिक्त अन्य किसी भी भाषा के साहित्य में भी गद्य-पद्य मिश्रित शैली प्रयोग का उदाहरण नहीं मिलता है। इसलिए वजही ने सबरस को आबेहयात कहा है। सबरस की गद्य-पद्य मिश्रित शैली के बारे में डॉ. नूरूस्सईद अख्तर कहते हैं कि-

'इस तरह पहली कामियाब कोशिश वजही की है जिसमें एक नयी मिठास और चाशनी है। उसमें नयेपन के साथ ही ताजगी और रंगीनी भी है।"

तुकान्त शैली का प्रयोग करना - वजही ने सबरस में तुकान्त शैली का प्रयोग किया है। तुकान्त वाक्य-रचना के आधार पर ही वजही ने गद्य की स्वाभाविक नीरसता को दूर करके सरसता, सौन्दर्य और प्रभाव उत्पन्न किया है। वजही को फारसी का अच्छा ज्ञान था, जिसका लाभ उन्होंने सबरस में उठाया है। वजही ने सबरस में तुकान्त शैली का प्रयोग सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। गद्य और पद्य को आपस में मिलाने और घुलाने के लिए विविध भाषाओं के शब्दों के ज्ञान के अतिरिक्त उन भाषाओं के मुहावरों, लोकोक्तियों और पद्यांशों से भी वजही ने पूरी सहायता प्राप्त की है। सूफी साधना के गूढ़ सिद्धांतों के प्रतिपादन में भी वजही ने तुकान्त शैली का चमत्कार दिखाया है।

निर्ष्कषतः कह सकते हैं कि सबरस की भाषा दक्खिनी हिन्दी भाषा के विकास-क्रम की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। सबरस की भाषा पर अरबी और फारसी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, ब्रज तथा स्थानिक भाषाओं का प्रभाव होने से भाषा अधिक अभिव्यक्तिक्षम और प्रभावी बन पायी है। गद्य और पद्य के मिश्रण से वजही ने नया मार्ग अपनाते हुए सबरस के रूप में अनोखा रास्ता निकाला है तथा इसी कारण सबरस का साहित्यिक मूल्य अधिक है। यह नया मार्ग उसका अपना खोज का अनुकरण और अवलंब है, वजही के बाद आज तक किसी ने नहीं किया है। यह सबरस की विशिष्टता और वजही की अपार योग्यता और विद्वत्ता का प्रमाण है।

संदर्भ

1. सक्सेना बाबूराव, दक्खिनी हिन्दी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद, 1951, पृ. 15। **2.** चटर्जी सुनीति कुमार, भारतीय आर्यभाषा और हिंदी, पृ. 212। **3.** डॉ. श्रीराम शर्मा (संपादक), सबरस, दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, 1955 पृ. 8। **4.** वही, पृ. 240। **5.** हक डॉ. अब्दुल, सबरस, इदारे अदबियाले ऊर्दू, हैदराबाद, 1932 पृ. 194। **6.** वही पृ. 200। **7.** वही पृ. 195। **8.** वही, पृ. 100। **9.** आजमी डॉ. मन्जर, सबरस का तनकीदा जाएजा, अन्जुमन तरक्की-ए-ऊर्दू, नई दिल्ली 2003, पृ. 30। **10.** हाशमी नसीरुद्दीन, दकन में ऊर्दू, निजाम दकन प्रेस, हैदराबाद, तीसरा संस्करण, 1958। **11.** वर्मा डॉ. धीरेन्द्र, हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, 1953।

हिन्दी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय,
पानबाजार, गुवाहाटी, असम
मो. 9435161974
ई-मेल : rupadinory@gmail.com

लेखिका ने दक्खिनी हिंदी की महत्वपूर्ण कृति 'सबरस' का सारगर्भित विवेचन किया है जिससे मेरा ध्यान इस ओर गया कि हिंदी भाषा-साहित्य के इतिहास में इसे उपेक्षित क्यों रखा गया? लेख में 'सबरस' को उपन्यास बताया गया है जो ठीक नहीं है, गद्य की इस विधा का आगमन ही 20वीं शताब्दी में हुआ, अंग्रेजी के अनुकरण पर। गद्य-पद्य में रचित 'सबरस' को लेकर यह लिखना भी ठीक नहीं कि इस मिश्रित शैली का प्रयोग अन्य किसी भाषा-साहित्य में नहीं हुआ, जबकि संस्कृत में इस शैली की रचनाएं उपलब्ध है जिन्हें 'चम्पू' कहा जाता है। - सम्पादक

●

रोग की पीड़ा शांत करने के लिए चित्ताकर्षक एवं मनोरंजक पुस्तक से बढ़कर कोई अच्छा साधन नहीं है।

आदिवासी साहित्य और मुख्यधारा का द्वंद्व : 'हम' और 'वे' का विमर्श

बबली कुमारी

प्रस्तावना : भारतीय साहित्यिक परंपरा में आदिवासी साहित्य का उद्‌भव एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक हस्तक्षेप है। यह साहित्य केवल हाशिये के समाज की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि मुख्यधारा के साहित्यिक वर्चस्व के प्रति एक गहन प्रतिरोध भी है। 'हम' (आदिवासी समाज) और 'वे' (मुख्यधारा समाज) की अवधारणा इस विमर्श का मूल आधार है, जिसमें आदिवासी साहित्य अपनी अस्मिता, सांस्कृतिक परंपरा और प्रतिरोधी चेतना के माध्यम से अलग पहचान बनाता है। इस आलेख में 'हम' और 'वे' की अवधारणा को सामाजिक मनोविज्ञान, उत्तर-औपनिवेशिक और सबाल्टर्न (उपेक्षित) दृष्टि से समझने का प्रयास किया गया है। आदिवासी साहित्य का स्वरूप भाषा, मिथक, लोकगीत और ऐतिहासिक विद्रोहों में स्पष्ट रूप से उभरता है। वहीं मुख्यधारा के साहित्य ने लंबे समय तक आदिवासियों को 'दानव', 'असभ्य' और 'जंगली' कहकर उनकी छवि विकृत की। रमणिका गुप्ता, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, हरिराम मीणा और वाहरु सोनवणे जैसे प्रसिद्ध रचनाकारों के उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी साहित्य प्रतिरोध का सौंदर्यशास्त्र रचते हुए हाशिये से केंद्र तक अपनी पहचान स्थापित कर रहा है। समकालीन संदर्भ में आदिवासी साहित्य अकादमिक विमर्श, मीडिया और अनुवाद के सहारे मुख्यधारा में जगह बना रहा है। यह प्रतिरोध और अस्मिता का सशक्त माध्यम है और इस द्वंद्व का समाधान संवाद, सह-अस्तित्व और सम्मानजनक प्रस्तुति से ही संभव है। **बीज शब्द :** आदिवासी साहित्य, हम और वे, अस्मिता, प्रतिरोध, मिथक, लोककथा, लोकतांत्रिक संवाद।

मूल आलेख : भारतीय साहित्य की समृद्ध परंपरा में आदिवासी साहित्य का स्वर एक अलग ही पहचान रखता है। यह केवल हाशिये पर पड़े समुदायों का अनुभव नहीं है, बल्कि मुख्यधारा की उस सोच को चुनौती भी है जिसने लंबे समय तक आदिवासी जीवन को 'अन्य' मानकर नकार दिया। इस प्रकार आदिवासी और मुख्यधारा साहित्य के बीच निरंतर द्वंद्व चलता है। यह द्वंद्व 'हम' (आदिवासी समाज) और 'वे' (मुख्यधारा समाज) की श्रेणियों में व्यक्त होता है। 'हम' अपने सामूहिक जीवन, प्रकृति आधारित संस्कृति और लोकतांत्रिक परंपरा के लिए जाने जाते हैं, जबकि 'वे' उपनिवेशवादी, सामंती और पितृसत्तात्मक संरचना से प्रभावित हैं। आदिवासी समाज की अपनी स्वतंत्र सांस्कृतिक धारा है, जिसे मुख्यधारा का

साहित्य लंबे समय तक उपेक्षित करता रहा। 'हम' और 'वे' की अवधारणा को समझने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया जाना आवश्यक हैं - आदिवासी साहित्य मुख्य धारा से कैसे अलग है? 'हम' और 'वे' की श्रेणियाँ किस प्रकार निर्मित होती हैं? यह विभाजन सांस्कृतिक अस्मिता और प्रतिरोध को कैसे प्रभावित करता है?

आदिवासी साहित्य में जीवन का यथार्थ, सामूहिक चेतना और प्रकृति-सम्बंध प्रमुख हैं। मुख्यधारा का समाज इन्हें 'जंगली' या 'असभ्य' कहकर अलग करता रहा है। आदिवासी समाज अपनी सामाजिक संरचना में भी बाकी गैर-आदिवासी समाजों से बहुत भिन्न है। ये श्रेणियाँ सत्ता और सांस्कृतिक प्रभुत्व से बनती हैं। मुख्यधारा का समाज आदिवासियों को 'हेय' मानता है, जबकि आदिवासी अपनी परंपरा में रचते-बसते हैं। यह द्वंद्व आदिवासी लेखन में प्रतिरोध और आत्म पहचान का स्रोत बनता है। वे अपने विस्थापन, संघर्ष और बलिदान को साहित्य में दर्ज करके अपनी अस्मिता को जीवित रखते हैं। 'अब हम लिख रहे हैं, तुम्हारे द्वारा थोपे गए विस्थापन के विरुद्ध अब हम अपनी पहचान को, अस्मिता को मिटने न देंगे। अपने आत्मसम्मान को भी टूटने नहीं देंगे हम... हमने सभ्यता के बढ़ते कदमों के साथ चलने की तुम्हारी चुनौती स्वीकार ली है। हमें अपनी छीनी गई जमीनें, अपने जंगल तुमसे वापस लेने हैं। अब हम अपनी मातृभाषा को जिंदा रखने के लिए लड़ेंगे, ताकि सब आदिम मनुष्य आपस में जुड़ सकें ।'[1]

'हम' और 'वे' की श्रेणियाँ दरअसल सामाजिक मनोविज्ञान का हिस्सा हैं। समूह-चेतना के स्तर पर हर समुदाय स्वयं को 'हम' के रूप में परिभाषित करता है और शेष को 'वे' मानकर अलग कर देता है। उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श में यही प्रक्रिया उपनिवेशकों और उपनिवेशितों के संबंध में दिखती है। आदिवासी समाज को भी मुख्यधारा ने इसी दृष्टि से 'असभ्य' या 'अन्य' कहकर परिभाषित किया। 'दरअसल आदिवासी संस्कृति, सोच और दृष्टि गैर-आदिवासी समाज की व्यक्तिवादी सामंती, साम्राज्यवादी व कहीं राजतंत्रवादी सोच व दृष्टि के एकदम विपरीत है।"[2] 'हम' (आदिवासी) और 'वे' (मुख्यधारा) की अवधारणाएँ, केवल सांस्कृतिक अंतर नहीं बल्कि सत्ता और विचारधारा का टकराव भी हैं। सबाल्टर्न अध्ययन में केंद्र और हाशिये की बहस महत्त्वपूर्ण है। इतिहास और साहित्य अक्सर केंद्र की आवाज को ही दर्ज करते हैं, जबकि हाशिये की आवाज दबा दी जाती है। आदिवासी साहित्य उसी मौन को तोड़ने का प्रयास है। सदियों से आदिवासी समाज को इतिहास और साहित्य की मुख्यधारा से बाहर रखा गया। उनके अनुभवों और दृष्टिकोणों को अनदेखा किया गया। यह दृष्टि सबाल्टर्न विमर्श की पुष्ट करती है कि आदिवासी साहित्य दरअसल हाशिये से केंद्र तक पहुंचने का संघर्ष है।

'अन्यता' वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी समाज की 'हमारे जैसा नहीं' मानकर उसके अनुभवों की छोटा किया जाता है। साहित्य में यह अन्यता बार-बार दिखाई देती है। मुख्यधारा आदिवासियों को 'जंगली' या 'पिछड़ा' बताकर उनकी संस्कृति को हीन ठहराती है। लेकिन आदिवासी लेखक इस 'अन्यता' को प्रतिरोधी सौंदर्यशास्त्र में बदल देते हैं। आदिवासी साहित्य में प्रतिरोध ही उसकी सौंदर्य दृष्टि है, जहाँ दुख और संघर्ष को गीत, कथा और मिथक के माध्यम से सुंदर और प्रेरक बना दिया जाता है। साहित्य में अन्यता को आदिवासी लेखक नकारते ही नहीं, बल्कि उसे सौंदर्य का रूप देकर प्रतिरोध का हथियार बना लेते हैं।

आदिवासी साहित्य का स्वरूप : 'हम' की पहचान

आदिवासी समाज की सबसे बड़ी पहचान उसकी भाषिक विविधता और सांस्कृतिक स्वतंत्रता है। इनकी भाषा-बोली केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि सामूहिक स्मृति और अस्मिता की संवाहक है।

आदिवासी संस्कृति अपनी सामूहिकता, समानता और प्रकृति आधारित जीवनशैली के कारण विशिष्ट है। आदिवासी समाज अपनी भाषाओं के माध्यम से ही अपनी अस्मिता को परिभाषित करता है। आदिवासी साहित्य में मिथक और लोककथाएँ सांस्कृतिक अस्मिता का मूल स्रोत हैं। इनमें प्रकृति, सृष्टि और मानव जीवन की उत्पत्ति के आख्यान दर्ज हैं। ये केवल धार्मिक विश्वास नहीं बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचे का दर्पण हैं। 'आदिवासी मिथक व लोक कथाओं की खास विशेषता यह है कि वे अपनी संस्कृति के अनुरूप हर अस्तित्व की कल्पना करते हैं, तो अपनी तत्कालीन समझ के अनुसार उनकी व्याख्या भी।... उसे वह दर्ज करता है। यह सब कैसे हुआ, क्यों हुआ, इस सबकी व्याख्या वह अपनी कथाओं या मिथकों के माध्यम से करता रहता है।[3] मिथक और लोककथाएँ आदिवासी अस्मिता के संरक्षण और पुनर्निर्माण का साधन है।

आदिवासी कविता और लोकगीत उनके सामूहिक जीवन की सांस्कृतिक धड़कन हैं। ये गीत श्रम, संघर्ष, उत्सव और प्रकृति से गहरे जुड़े होते हैं। इनमें दुःख और पीड़ा को भी गीत और नृत्य में बदल देने की अद्भुत परंपरा दिखाई देती है। यह सही है कि आदिवासियों के इतिहास को मैदानी लोगों ने दस्तावेज़ों या शिलालेखों में जिंदा नहीं रखा, लेकिन उनके लोकगीतों, लोककथाओं, किंवदंतियों, मुहावरों, उनके पर्वों व उत्सवों और नृत्यों में वह जिंदा रहा है।"[4] आदिवासी कविता और लोकगीत उनके सामूहिक जीवनदर्शन का सौंदर्यशास्त्र निर्मित करते हैं। आदिवासी साहित्य केवल संस्कृति का संवाहक ही नहीं बल्कि प्रतिरोध का भी वाहक है। बिरसा मुंडा का 'उलगुलान', सिद्धो-कान्हू का संताल विद्रोह' और तिलका मांझी जैसे योद्धाओं की गाथाएँ आदिवासी साहित्य में बार-बार लौटती हैं। ये आंदोलन उनकी अस्मिता और स्वतंत्रता की रक्षा के प्रतीक हैं। आदिवासी साहित्य में प्रतिरोध केवल अतीत की स्मृति नहीं बल्कि वर्तमान की चेतना भी है।

मुख्यधारा के साहित्य का स्वरूप : 'वे' का विमर्श

मुख्यधारा साहित्य लंबे समय तक आदिवासी समाज को 'अन्य' मानकर देखता रहा है। इस दृष्टि में जातीय श्रेष्ठता और पितृसत्तात्मक सोच गहराई से निहित रही। मुख्यधारा का यह नजरिया आदिवासी समाज की स्वतंत्र और समानतावादी परंपरा को अस्वीकार करता है। भारतीय साहित्य की मुख्यधारा में आदिवासी चरित्रों को अक्सर विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया। 'बहुसंख्यक, अति बौद्धिक, बलशाली, धनिक या अभिजात सामाजिक समूह भी सत्ता हथिया कर उनका शोषण-दोहन करते हैं। आज भी ऐसे लोग व समूह हैं, जो आदिवासी समाज को जंगली व पिछड़ा कहते हैं। वे उन्हें मनुष्य भी नहीं समझते।"[5] उन्हें वनवासी या जंगली कहकर दिखाया गया, जिससे उनकी असली सांस्कृतिक पहचान दबा दी गई। महाकाव्यों और पुराणों में आदिवासी चरित्रों को दानव या असुर कहकर चित्रित किया गया, ताकि उनके संघर्ष और संस्कृति को नकारा जा सके। मुख्यधारा के साहित्य ने आदिवासी अस्मिता को हीन और हास्यास्पद ठहराने की कोशिश की। मुख्यधारा के साहित्य का सबसे बड़ा संकट यह रहा है कि उसने आदिवासी जीवन को आदिवासियों की दृष्टि से प्रस्तुत करने के बजाय 'वे' की व्याख्या में डालकर दिखाया। इससे आदिवासी अनुभवों की मौलिकता नष्ट होती रही। मुख्यधारा का लेखक आदिवासी जीवन को बाहर से देखता है, इसलिए उसके अनुभव केवल बाहरी चित्रण बनकर रह जाते हैं, भीतर की सच्चाई नहीं। मुख्यधारा में आदिवासी समाज का चित्रण अक्सर अधूरा और विकृत रहा है।

'हम' और 'वे' का द्वंद्व टकराव और संवाद

भाषा और लिपि के स्तर पर 'हम' और 'वे' का संघर्ष सबसे गहरा है। आदिवासी भाषाएँ (मुंडारी, संथाली, खड़िया, कुड़ुख, हो, आदि) उनकी अस्मिता का मूल स्रोत हैं। लेकिन मुख्यधारा ने उन्हें हाशिये पर

डालकर हिन्दी और अंग्रेज़ी को वर्चस्वशाली बनाया। भाषा ही वह क्षेत्र है जहाँ 'हम' की अस्मिता और 'वे' का वर्चस्व आमने-सामने टकराते हैं। आदिवासी समाज की जीवनशैली जल-जंगल-जमीन से गहराई से जुड़ी है। लेकिन विकास के नाम पर इन्हीं संसाधनों पर सबसे अधिक आघात हुआ है। मुख्यधारा की नीतियों ने आदिवासियों को उनके अपने भूगोल से विस्थापित कर दिया। 'वे' की विकास दृष्टि, 'हम' की अस्मिता को छीन लेने वाली प्रक्रिया है। विस्थापन आदिवासी साहित्य का सबसे मार्मिक विषय है। विकास की परियोजनाओं ने उन्हें उजाड़ा और शहरों की ओर पलायन के लिए विवश किया। 'जहां कोयला है, माइका है, मैंगनीज या बाक्साइट अथवा यूरेनियम है.... उन जमीनों पर बसने वाले लोग कौन थे या कहां गए वे लोग, क्या किसी ने पूछा, पता लगाया? लाखों लोग उजड़ गए खदानों में और लाखों बेघर हो गए डैमों में, जिनमें 80 प्रतिशत आदिवासी हैं। विस्थापित होकर लोग रोज़गार की खोज में चल दिए बड़े शहरों की ओर और कट गए अपनी भाषा, संस्कृति और जड़ों से। कल का किसान आज वहां कोयला चोरी पर जिंदा है या बड़े शहरों में मजदूरों की यायावर जमात बनकर जी रहा है।"[6] यह संघर्ष 'हम' और 'वे' के द्वंद्व का सबसे विकट रूप है।

आदिवासी साहित्य में स्त्रियों की अस्मिता का प्रश्न बेहद महत्त्वपूर्ण है। आदिवासी स्त्रियाँ दोहरी लड़ाई लड़ती हैं। ये अपनी अस्मिता की लड़ाई भीतर भी लड़ती हैं और बाहर भी। भीतर परिवार और समाज की जड़ताओं से, बाहर सत्ता और मुख्यधारा के शोषण से। यह शोषण आदिवासी स्त्री के साहित्य में प्रतिरोध का स्वर बनकर प्रस्फुटित होता है। यद्यपि 'हम' और 'वे' का द्वंद्व तीक्ष्ण है, परंतु साहित्य में संवाद की संभावनाएँ भी मौजूद हैं। अनुवाद, संगोष्ठियों और आदिवासी लेखकों के मंच इस पुल का निर्माण करते हैं। यह संवाद केवल साहित्यिक आदान-प्रदान नहीं, बल्कि अस्मिता और सम्मान की साझेदारी है। संघर्ष के बावजूद संवाद और सह-अस्तित्व की संभावनाएँ बनी हुई हैं।

साहित्यिक उदाहरणों में 'हम' और 'वे' का विमर्श

अप्रैल 1930 को सुनाम, पंजाब के एक संभ्रांत परिवार में जन्मी रमणिका गुप्ता कवयित्री, आत्मकथाकार, संपादक, राजनीतिज्ञ, मजदूर नेता और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में झारखंड के कोयलांचल क्षेत्र में सक्रिय रही हैं। अब तक इनके 16 कविता संग्रह, दो उपन्यास, एक कहानी संग्रह, एक यात्रा संस्मरण, आत्मकथा और दलित व नारी विमर्श पर कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी आत्मकथा 'आपहंदरी' हिंदी साहित्य में सबसे बोल्ड आत्मकथा के रूप में प्रसिद्ध है, साथ ही इनके द्वारा संपादित पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' बहुचर्चित रही है।

कोयले की धूल से अँधेरी बस्तियों में जब शाम उतरती है, रमणिका की पंक्तियाँ जैसे लालटेन बनकर जल उठती हैं। उनके साहित्य में 'हम' वे लोग हैं जिनकी हथेलियों पर जंगल की हरियाली और खदान की काली चमक साथ-साथ चिपकी है - आदिवासी, मज़दूर, स्त्रियाँ जो रोज अपनी नींद गिरवी रखकर रोटी उठाते हैं। 'वे' वे हैं जो फ़ाइलों और फतवों की भाषा बोलते हैं; जिनके शहर उजले हैं पर उजाला कहीं और से खींच लाते हैं। रमणिका कथा नहीं सुनातीं, गवाही दर्ज करती हैं। 'हम' की बोली उनके पन्नों पर मानक हिंदी को हल्का-सा धक्का देती है, ताकि पहाड़, नदी, साल के पेड़ और ढोल की धड़कन भी बोल सकें। कभी 'बहू जुठाई' की चुप्पी टूटती है, कभी 'कोयले की चिंगारी' से उजाला 'वे' की हवेलियों तक जाता देखकर 'हम' की आँखें जल उठती हैं। पर यही जलन प्रतिरोध की लौ है, जो बताती है कि विकास तभी सच्चा है जब जंगल सिर्फ नक्शे पर नहीं, लोगों की देह और स्मृति में भी बचे। रमणिका जी के साहित्य में 'हम' केवल पीड़ित नहीं, स्मृति और नैतिकता के संरक्षक हैं; और 'वे' एक आईना, जिसमें समाज

अपने ही नकाबपोस चेहरे पहचानना सीखता है।

मार्च 1972 में झारखंड के दुमका जिले के दुधनी कुरुवा गाँव के संथाल आदिवासी परिवार में जन्मी निर्मला पुतुल मूलतः कवयित्री और सामाजिक कार्यकर्ता हैं। वे विगत दो दशकों से भी अधिक समय से आदिवासी समाज के उत्थान के लिए व्यक्तिगत, सामूहिक, और संस्थागत स्तर पर सतत सक्रिय हैं। उनका पहला कविता संग्रह 'अपने घर की तलास में' वर्ष 2004 में रमणिका फाउंडेशन से द्विभाषा (संथाली और हिंदी) में प्रकाशित हुआ। उनका दूसरा कविता संग्रह 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासी और स्त्री साहित्य की सशक्त आवाज़ के रूप में पहचाना गया, उनकी कविताओं का अनुवाद विभिन्न भारतीय और विदेशी भाषाओं में हुआ है। निर्मला पुतुल स्त्री विमर्श को आदिवासी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हुए स्त्री जीवन के अंतर्विरोधों को बेबाक स्वर देती हैं, जो मुख्यधारा के स्त्रीवाद से अलग और विशिष्ट है। उनकी कविताओं में स्त्री का दोहरा संघर्ष दिखाई देता है। एक ओर आदिवासी समाज के भीतर की पितृसत्ता, और दूसरी ओर मुख्यधारा के शोषणकारी ढाँचे हैं। आदिवासी स्त्रियों के प्रति तथाकथित सभ्य समाज के रवैये पर उंगली उठाते हुए तथा अपने समाज को सचेत करते हुए वे लिखती हैं -- *'देखो तुम्हारे ही आंगन में बैठे, तुम्हारे हाथों बनी हड़िया तुम्हें पिलाकर, कोई कर रहा है। तुम्हारी बहनों से ठिठोली।* वे उन्हें बताती हैं गरीबी का राज- *ये वे लोग हैं जो, हमारे ही नाम पर लेकर गटक जाते हैं, हमारे ही हिस्से का समुद्र।'*[7] निर्मला पुतुल का साहित्य स्त्री अस्मिता और सामाजिक प्रतिरोध दोनों का संगम है, उनकी कविताओं में 'हम' और 'वे' का द्वंद्व प्रत्यक्ष रूप में दिखायी देता है।

राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले के बामनवास गाँव में 1952 में जन्मे, भारतीय पुलिस सेवा में कार्यरत और पुलिस महानिरीक्षक के पद से सेवानिवृत्त हरिराम मीणा संप्रति अखिल भारतीय आदिवासी साहित्य मंच, दिल्ली के अध्यक्ष, समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी अस्मिता और सामाजिक चेतना के प्रखर स्वर हैं। उनके अब तक तीन कविता-संग्रह- 'हाँ, चाँद मेरा है', 'सुबह के इंतज़ार में', 'आदिवासी जलियाँवाला एवं अन्य कविताएँ', एक प्रबंध-काव्य - 'रोया नहीं था यक्ष', तीन यात्रा-वृत्तांत, एक उपन्यास, आदिवासी विमर्श की दो पुस्तकें तथा समकालीन आदिवासी कविता (संपादन) पर एक पुस्तक प्रकाशित हैं। उनके साहित्य में 'हम' और 'वे' का द्वंद्व एक केंद्रीय विमर्श के रूप में उपस्थित है। यह द्वंद न केवल आदिवासी और गैर-आदिवासी समाज के बीच के संघर्ष को उजागर करता है, बल्कि सत्ता और वंचितों, केंद्र और परिधि, मुख्यधारा और हाशिए के बीच मौजूद असमानताओं को भी सामने लाता है। वे लिखते हैं- 'भारतीय सन्दर्भ में राष्ट्र निर्माण और राष्ट्र उत्थान की प्रक्रिया पर नजर डालें तो पता लगता है कि जनसंख्या के अधिकांश भाग को जान-बूझकर एक सोची-समझी चाल के तहत हाशिए पर छिटकाया जाता रहा है।... ऐसा इसलिए हुआ या किया गया कि एक वर्ग विशेष को अपना वर्चस्व बनाए रखना था। इस वर्ग ने अपने शास्त्र रचे, अपना इतिहास बनाया, अपनी व्यवस्था बनाई और स्वयं को श्रेष्ठ साबित किया तथा अपने हित में बनाई गयी इस व्यवस्था को सारे समाज पर बलात् थोप दिया...जब हम आदिवासी वर्ग को केन्द्र में रखकर चर्चा करते हैं तो इसी लोकचेतना को व्यापक और सघन करने के पक्ष में खड़े होते हैं"[8] हरिराम मीणा आदिवासी इतिहास और संस्कृति को पुनः परिभाषित करने वाले लेखक हैं। उनका लेखन आदिवासी संघर्षों को केंद्र में रखकर 'हम' की पहचान को पुष्ट करता है। इतिहास में आदिवासी केवल पराजित या असभ्य नहीं थे, वे अपने समाज और संस्कृति के नायक थे। इसी दृष्टि को पुनर्लेखन में सामने लाना जरूरी है। हरिराम मीणा का साहित्य आदिवासी इतिहास को नए परिप्रेक्ष्य में

प्रस्तुत करता है, जिससे 'हम' और 'वे' का द्वंद्व और स्पष्ट हो जाता है।

ग्रेस कुजूर आदिवासी स्त्री स्वर की प्रतिनिधि कवयित्री हैं। झारखंड रांची के इटकी में एक उरांव आदिवासी परिवार में जन्मी ग्रेस कुजूर ने 1966 में लेखन कार्य आरंभ किया। उन्होंने ऑल इंडिया रेडियो में भिन्न-भिन्न पदों पर अपनी सेवाएँ दी। वर्ष 2008 में आकाशवाणी से कार्यक्रम महानिदेशक के पद से अवकाश ग्रहण किया। उनकी कविताएँ नियमित तौर पर प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। उनका पहला काव्य संग्रह 'एक और जानी शिकार' वर्ष 2020 में प्रकाशित हुआ, जिसमें 1967 से 2019 के बीच लिखी गई 70 कविताएँ हैं। उनकी कविताएँ प्रतिरोध और अस्मिता की आवाज हैं। ग्रेस कुजूर का साहित्य प्रतिरोध का सौंदर्यशास्त्र रचता है, जो 'हम' और 'वे' के बीच संवाद को संघर्ष में बदल देता है। 'कलम को तीर होने दो' में वे स्पष्ट रूप से कहती हैं कि साहित्य केवल सौंदर्य का माध्यम नहीं, बल्कि प्रतिरोध का हथियार भी होना चाहिए - *'वे लूटने-लुटाने आए हम गए परदेश, धरती उजड़ी, उजड़े जंगल रह गए शेष, झाड़ियां हो गईं कमान, सब बिरवै तीर, देखना बाकी है कलम को तीर होने दो। ईंटों के भट्ठों में सीज गई जिंदगी, रोटी की खोज में कहां नहीं भागी, बाहें हो गई कमान, सब उंगलियां तीर देखना बाकी है कलम को तीर होने दो।'*[9]

महाराष्ट्र के भील आदिवासी समुदाय से आने वाले कवि वाहरु सोनवणे के साहित्य में मुख्य धारा और आदिवासी का द्वंद्व स्पष्ट दिखाई देता है। वे मुख्य धारा द्वारा आदिवासियों को भीड़ जुटाने वाली जमात समझे जाने से दुखी हैं। उनकी चर्चित कविता 'स्टेज' व्यंग्य और प्रतिरोध की अद्भुत अभिव्यक्ति मानी जाती है। इसमें सच प्रतिरोध के साथ उभरता है - *'हम मंच पर गए ही नहीं, और हमें, बुलाया भी नहीं गया, उँगली के इशारे से हमारी जगह, हमें दिखाई गई। हम वहीं बैठे रहे, हमें मिली शाबासी। और वे स्टेज पर खड़े हो हमारा दुःख-दर्द, हम पर हो रहे अत्याचार और हमारे शोषण को बताते चिल्लाते रहे - ऐ आदिवासी भाईयो! अब दुःख-दर्द मत सहो। हमारा दुख-दर्द हमारा ही रहा, कभी उन सत्ताधारियों का नहीं बना।'* यहाँ 'हम' यानी आम जनता, मजदूर, आदिवासी - कभी मंच पर जगह नहीं पाते। 'वे' यानी नेता, अधिकारी और संभ्रांत वर्ग हमेशा मंच पर विराजमान होते हैं। कविता यह संकेत देती है कि सत्ता और मंच पर हमेशा 'वे' ही रहते हैं, जबकि 'हम' सिर्फ श्रोता, दर्शक और शोषित रह जाते हैं।

समकालीन संदर्भ और चुनौतियाँ

पिछले कुछ दशकों में आदिवासी साहित्य ने मुख्यधारा में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। अब यह केवल 'हाशिये का साहित्य' न रहकर भारतीय साहित्य की मुख्य धारा में पहचाना जाने लगा है। पत्रिकाओं, संकलनों और विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों में इसे स्थान मिलना इसकी स्वीकृति का प्रमाण है। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में आदिवासी साहित्य पर विमर्श बढ़ा है। पहले यह केवल समाजशास्त्र या नृविज्ञान का विषय माना जाता था, लेकिन अब इसे साहित्यिक विमर्श का भी हिस्सा बनाया जा रहा है। मीडिया और अनुवाद ने आदिवासी साहित्य को व्यापक पहुँच दी है। पहले यह अपनी भाषाओं और इलाकों तक सीमित था, परंतु अब हिन्दी, अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं में अनुवाद के कारण इसकी आवाज विश्व स्तर तक पहुंची है। अनुवादों और मीडिया के सहारे आदिवासी साहित्य अब सीमाओं को लांघकर राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर पढ़ा जा रहा है। 'हम' और 'वे' के बीच पुल बनाना, भविष्य में आदिवासी साहित्य का सबसे बड़ा कार्य होगा। 'हम' और 'वे' के बीच की खाई को पाटना केवल संवाद से संभव है, जहाँ दोनों पक्ष समानता और सम्मान के आधार पर मिल सकें। सांस्कृतिक सह-अस्तित्व और लोकतांत्रिक संवाद

आदिवासी साहित्य, भारत की विविधता और लोकतांत्रिक चेतना का हिस्सा है। इसमें यह क्षमता है कि वह सह-अस्तित्व और साझी संस्कृति की दिशा में मार्ग प्रशस्त कर सके।

निष्कर्ष : 'हम' और 'वे' का द्वंद्व केवल साहित्यिक विमर्श भर नहीं है, बल्कि भारतीय समाज का गहरा सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ है। आदिवासी साहित्य ने इस द्वंद्व को उजागर करते हुए यह दिखाया है कि किस प्रकार मुख्यधारा ने लंबे समय तक आदिवासी समाज को 'अन्य' मानकर हाशिये पर रखा। इस प्रक्रिया में आदिवासी साहित्य ने अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को सुरक्षित रखा, बल्कि प्रतिरोध का भी एक सशक्त सौंदर्यशास्त्र गढ़ा। मिथक, लोककथाएँ, गीत-कविताएँ और आंदोलन ये सभी उस प्रतिरोधी चेतना के अंग हैं जिसने आदिवासी समाज को अपनी पहचान के लिए निरंतर संघर्षरत बनाए रखा। साहित्यिक उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि रमणिका गुप्ता, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल और हरिराम मीणा जैसे लेखक और कवि 'हम' और 'वे' के बीच की खाई को न केवल उजागर करते हैं, बल्कि उसे पाटने की भी कोशिश करते हैं। उनका लेखन बताता है कि आदिवासी साहित्य केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि परिवर्तन और पुनर्निर्माण का माध्यम भी है। समय की माँग है कि यह द्वंद्व संघर्ष तक सीमित न रहकर संवाद और सह-अस्तित्व की ओर बढ़े। मुख्यधारा को आदिवासी साहित्य को सम्मानजनक स्थान देना होगा और आदिवासी लेखन को भी व्यापक लोकतांत्रिक विमर्श में अपनी भूमिका निभानी होगी। अतः यह कहा जा सकता है कि आदिवासी साहित्य प्रतिरोध और अस्मिता का सशक्त माध्यम है और 'हम' और 'वे' के इस द्वंद्व का समाधान केवल साहित्यिक पुल, सांस्कृतिक सह-अस्तित्व और लोकतांत्रिक संवाद से ही संभव है।

संदर्भ

1. रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः 2017, पृ. 17। **2.** वही पृ. 12। **3.** वही पृ. 35। **4.** वही पृ. 84। **5.** वही पृ. 85। **6.** रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2015, पृ. 17। **7.** वही पृ. 128। **8.** रमणिका गुप्ता, आदिवासी समाज और साहित्य, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण : 2015, पृ. 66-67। **9.** रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2017, पृ. 20।

शोधार्थी - हिंदी विभाग,
नीलाम्बर-पीताम्बर विश्वविद्यालय,
मेदिनीनगर, पलामू, झारखंड-822102
मो. 9693170331
ई-मेल : babaly.r92@gmail.com

●

कुछ पुस्तकें रखने के लिए, कुछ परीक्षण के लिए, कुछ चबाने के लिए, कुछ खाने के लिए, कुछ दिखाने के लिए तथा कुछ हजम करने के लिए होती हैं।

- फ्राँसिस बेकन

राजस्थान के पूर्व जोधपुर राजघराने में सती प्रथा : एक विश्लेषण

डॉ. निशा भारद्वाज

राठौड़ राजपूत जोधा (1438-88 ई.) ने 1456 ई. में मंडोर में अपने राज्य मारवाड़ की स्थापना की, फिर जोधपुर बसा कर उसे राजधानी बनाया। मारवाड़ परगना री विगतनुसार राठौड़ राज्य संस्थापक राव जोधा ने राजधानी जोधपुर में चिड़ियाटूक पहाड़ी पर 9 लाख रुपये में चार बुर्जधारी मेहरानगढ़ किला बनवाया था। पहाड़ की पक्षी मयूर आकृति के कारण किले का नाम 'मयूरध्वज' रखा था। राव ने किले में कहीं भी महिला-पुरुष के लैगिंग आधार पर कमठा निर्माण नहीं करवाया था। सर्वप्रथम रनिवास की महत्ता और निजता को समझकर राव के पुत्र सुजा (1491-1515 ई.) ने किले में जनाना घर बनवाए थे। जनाना घर में राजघराना महिलाओं को पुरुषों से अलग निवास और राजशी सुविधाएँ प्रदान की गई थी। राजा सूरसिंह (1595-1619 ई.) ने राठौड़ दरबार के दस्तूरों की महत्ता और राज्य के राजनैतिक वर्चस्व को स्थापित करने के लिए किले में 'चित्र सेवा री हमार' के पूजनीय स्थान पर जनाना ड्योढ़ी बनवाई थी। *जनाना ड्योढ़ी* का मतलब भिन्न प्रवेश द्वार वाली एक अलग-थलग महली व्यवस्था अर्थात किले में हर प्रकार की पुरुष दखल-अन्दाजी (पहरेदार भी नपुंसक नाजर होते थे) से अलग निवास व्यवस्था होती थी, जिसमें रानियों के लिए रंगमहल, शयनकक्ष, रसोड़ा और निज-कक्ष थे। राजा सूरसिंह ने रानियों की राजशी निजता के लिए 1615 ई. में हमाम (स्नान घर) तथा पूजा-पाठ के लिए किले में ठाकुर जी व कुलदेवी नागणेचिया और हरकाबाई सती आदि का मंदिर बनवाया था।[1] राठौड़ राज्य, राजवंश और जनाना ड्योढ़ी की स्थापना और महत्व को समझने के बाद अपने मुख्य विषय सती परम्परा को देखने और समझने का प्रयास करते हैं।

राठौड़ राजलोक की सती राजनीति : सती परम्परा की आड़ में की जाने वाली राजनीति को समझने के लिए हमें सती परम्परा की वास्तविकता को देखना समझना पड़ेगा, तभी हम राठौड़ रानियों द्वारा सती होने की राजनीति और गौरवान्वित महसूस करने के पीछे का रहस्य समझ सकते हैं। राठौड़ राव सिहा के स्मारक लेख में (1273 ई.) में राव सीहा के पीछे सती होने वाली पार्वती सोलंकी रानी की देवली का उल्लेख मिलता है। दूसरा हमें राव सातल पुत्र रायसल के पीछे सती होने वाली रानियों का शिलालेख मिलता है।[2] इन शिलालेखों में हमें सती होने वाली महिलाओं के सम्मान या प्रशंसा में कोई भी शब्द लिखा नहीं मिलता है, सिर्फ

पति के परलोकगमन मार्ग का पत्नी द्वारा अनुसरण करने की सूचना मिलती है। राठौड़ ख्यात-बहियों में पति का अनुसरण करना राठौड़ रानी का कर्तव्य समझाया गया है, यही सती यानि सत् मार्ग या सत् परम्परा है। मेरे इस तर्क का आधार मारवाड़ री ख्यात में दर्ज महाराजा विजयसिंह के कंवर फतेहसिंह की 1777 ई. में मृत्यु के बाद सात पुत्रवधुओं में से किसी एक भी रानी के सती न होने की बात (सती एक भी नहीं हुई) कहकर मायूसी प्रकट करना है।[3]

मुरारीदान री ख्यात अनुसार राव सातल के पीछे सती होने वाली रानी हरखाबाई का, नागणेचिया माता (राठौड़ कुलदेवी) संग मारवाड़ी जन-समाज आज तक पूजन करता है, क्योंकि रानी हरखाबाई ने संतानहीन होकर भी अपनी राजनैतिक समझ और राज्यतंत्र पर अपनी पकड़ के कारण, ताकतवर 10 देवरों में से अपने प्रभाव में रहने वाले देवर सूजा को राज्य दिलवाया था।[4] इस प्रकार रानी हरखाबाई राव सूजा के लिए राज्य दिलवाने वाली संस्था रूप में मान्य होकर (राव सूजा ने भाभी हरखाबाई की राजनैतिक शक्ति को इतिहास में गौण बनाने के लिए उनको सती माता बना दिया था) भी जन-समाज में पति के पीछे जीवन बलिदान करने वाली सती रूप में महानता की प्रतीक बना दी गई थी। शायद इसी महानता और प्रसिद्धि के कारण ने राठौड़ राजलोक में, जन-समाज में त्याग की प्रतिमूर्ति बनने और देवी माता का दर्जा पाने की लालसा पैदा कर दी हो। राठौड़ राजलोक ने सती होने की राजनीति करके अपना राज्य और जनसमाज में ख्याति प्राप्त करके हित साधा था। हम जानते हैं कि, पति राजा के जीवन काल में रानियों को अर्द्धांगिनी अधिकार नहीं मिलते थे। सौत पुत्र के शासन काल में उनकी राजनैतिक ताकत कम हो जाती थी। विधवा रानियों को समय और परिस्थितियों के अनुसार अपनी संतान के हित में कूटनीति आधार पर चुप्पी साधे रखनी पड़ती थी, ताकि अवयस्क संतान (छोटी उम्र के पुत्रों) के जीवन पर किसी प्रकार का राजनैतिक सकंट उत्पन्न न हो। रानीमंगा भाटों की बही से हमें विधवा रानियों के वृंदावन और मथुरा में जाकर भगवान-भक्ति में जीवन खपा देने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।[5] सती रूप में की जाने वाली राजनीति को हम 'सती वचन' और 'सती श्राप' के उदाहरण सहित (कहानियों, मिथकों और साहित्यिक) प्राप्त करते हैं।

बाँकीदास री ख्यात के अनुसार हम राठौड़ राव-राजाओं के पीछे सती होने वाली रानियों द्वारा पुत्रों को दिए जाने वाले श्राप को सत्य होने और राठौड़ सरदारों द्वारा सती रानी को दिए वचन का पालन करने की कहानियाँ प्राप्त करते हैं, जोकि समकालीन इतिहासकारों द्वारा हमारा ध्यान भटकाने की प्रभावी सामग्री के रूप में परोसी गई है। अर्थात राठौड़ राजाओं ने अपनी माताओं को शक्ति ग्रहण करने में सहायता देने वाली प्रभावशाली राजनैतिक व्यक्ति या संस्था रूप में उपयोग किया था, परन्तु पितृसत्तात्मक इतिहास में राजघराना की महिलाओं के राजनैतिक प्रभाव को न दिखलाने के लिए उनकी सती माता के रूप में प्रस्तुती, सती वचन और श्राप के औचित्य को अहम् घटक के रूप में ख्यातों-बहियों में प्रस्तुत कर दिया है। जैसे कि राव चन्द्रसेन ने, पाटवी कंवर होने के बावजूद भाइयों और उमरावों के विद्रोह से बचने के लिए माँ सरूपदेवी झाली को पिता संग सती नहीं होने दिया था। सती माँ समर्थन (झाली रानी ने सती श्राप का भय दिखलाकर राठौड़ सरदारों और भाइयों से राव चन्द्रसेन के राज्याधिकार को स्वीकृति दिलवाई थी) अपने हक में करवाने के बाद अगली सुबह सती होने दिया था। नाराज सती सरूपदेवी ने राव चन्द्रसेन को श्राप दिया था कि, तेरे पास राज्यहक सुरक्षित नहीं (तै मोनू राज रा बंदोवस्त वास्तै रावजी संग बलण न दीवी सो थारो राज मत रहे) रहेगा।[6] इस प्रकार लेखक ने झाली रानी के राठौड़ सरदारों पर राजनैतिक प्रभाव को उनके श्राप दिए जाने की घटना से जोड़ दिया था, ताकि हम संवेदनशील मानवीय

आधार पर उनकी राजनैतिक ताकत को अंधेरे में डालकर सती माता के रूप में बखान करें।

राणीमंगा भाटों की बही अनुसार राव मालदेव की उमादेवी भटियानी रानी ने भी गोद के पुत्र राम को राज्यहक न (थारै जोधपुर रो राज आवै नहीं हूँ धणी सू रूसणो कर आई छुपण बीजी कोई मत करजो, इण तरै नाठो तो राज आवै नहीं) मिलने का श्राप दिया था।[7] यह उदाहरण भी हमें राव राम के कमजोर राजनैतिक व्यक्तित्व और कार्य कुशल रणनीतिक न होने के रूप में पहचानने नहीं देता है। वस्तुतः राव चन्द्रसेन और राव राम का मारवाड़ राज्यहक सुरक्षित न रहने का कारण उस समय की राजनैतिक परिस्थितियाँ हैं, क्योंकि एक तरफ मुगल बादशाह अकबर अपनी शक्ति का झंडा भारत में लहरा रहा था, तो दूसरी तरफ राजपूत ठाकुर आपसी गृहयुद्ध में शक्ति गंवा रहे थे। इसी कारण राव उदयसिंह बादशाह अकबर के संरक्षण में जोधपुर का राजा बन गया था। इस प्रकार सती रानियाँ देवी माता की तरह सत्य की प्रतिमूर्ति नहीं थी, बल्कि सती होना राजघराना महिलाओं की मजबूरी होता था, जोकि उनके संतानहीन होने, संतान से उपेक्षा प्राप्ति (राव मालदेव की झाली और उमादेवी भटियानी रानी, महाराजा अजीतसिंह की चौहान रानी) और संतान हत्या देखने के दुख से निजात प्राप्ति (महाराजा अजीतसिंह की बड़ी भटियानी, सिसोदिया और छोटी चौहान रानी) रूप था, जिसको हम आगे विभिन्न उदाहरणों के तहत समझेंगे।

मुरारीदान री ख्यात के अनुसार सती होने वाली रानियों की आज्ञा का पालन करना राठौड़ सरदार अपना कर्तव्य मानते थे। महाराजा गजसिंह के स्वर्गवासी होने पर केसरदेवी नरूकी रानी ने सत् धारण करने से पहले सीकदार राघोदास को सभी कैदियों को रिहा करने का आदेश दिया था।[8] वास्तव में यह स्वर्गवासी राजा और उसकी रानियों के प्रति राठौड़ सरदारों की निष्ठा एवं स्वामीभक्ति होती थी, जिसको समकालिक लेखक रानी की सती रूप में महिमा मंडित करके गौण बना देता था। महाराजा बख्तसिंह की सती रानियों ने भी व्यास उदयचन्द नाथावत और उनके पुत्र को कैद से रिहा करवाया था।[9] इसके अलावा सती होने वाली रानियाँ राजकोष से रुपया मंगाकर खैरात में बांटती थी।[10] मारवाड़ री ख्यातानुसार महाराजा अभयसिंह के पीछे सती होने वाली तंवर रानी ने दान पुण्य और झालरा बनवाने के लिए 42000 रुपया कामदार बोड़ा सामीदास को प्रदान किया था।[11] इस प्रकार राजघराना महिला पति मृत्यु बाद यकायक राजकोष से दानपुण्य और कैदियों को रिहा करवाने का राजनैतिक अधिकार प्राप्त कर लेती थी, जिसको वे जिंदा रहते हुए न पाकर अपनी मृत्यु समय प्राप्त करके अपने राजनैतिक अस्तित्व और औचित्य को सिद्ध कर देती थी।

महाराजा श्री विजयसिंघजी री ख्यातानुसार कंवर भोमसिंह की पत्नी भटियानी रानी ने सती-सवारी के समय मंडी में भगवान गणेश जी मंदिर के दर्शन करके सेवा स्वरूप अपने गहने चढ़ाए थे तथा घाटी के ऊपर रहने वाले भंगी को 300 रुपये के गहने साल (कमरा) बनवाने के लिए दिए थे।[12] महाराजा भीमसिंह की देवड़ी रानी ने अपने बर्तन और चाँदी का पलंग बालकिसन मंदिर को भेंट किया था।[13] इस प्रकार सती रानियाँ अंतिम समय में धर्म-कर्म करके (निजी सामान को खालसा होने अर्थात राज्य के अधिकार में चले जाने से बचाकर धार्मिक छवि ईजाद करके राजनीति करती थी) अपनी छवि लोक-समाज समक्ष कल्याणकारी और दानमयी रूप में प्रस्तुत करती थी, ताकि लोक-समाज किवंदतियों और प्रशंसा गीत गाकर उन्हें अमर बना दे, जोकि जीते-जी संभव न था।

जोधपुर हुकूमत बही के प्रलेखानुसार महाराजा जसवंतसिंह की जलती चिता में पूरबिया कल्याण ने कूद कर आत्मदाह कर लिया था।[14] महाराजा अजीतसिंह संग दो नाजर नथू, किरणो और सिसोदिया उमेदसिंह ने सत् (आत्मदाह) मार्ग का अनुसरण किया था।[15] महाराजा विजयसिंह संग जाट

आसीयो और महाराजा भीमसिंह के दुख में सौड़ बखतौ ने आत्मदाह कर लिया था। इसके अलावा राठौड़ राजाओं संग वडारन और दासी भी काफी संख्या में सती होती थी।[16] इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि, सती यानी सत् मार्ग पर चलने की बाध्यता पत्नी तक सीमित नहीं थी। इस राह में निष्ठा अहम् स्थान रखती थी, जिसमें पुरुष-नारी का कोई लैगिंग भेदभाव नहीं था। दूसरा हम वडारनों और राजलोक दासियों के अपनी स्वामिनी संग जीवन स्वाहा करने के पीछे अपने निजी धन के खालसा होने या राज्य- पूँजी बन जाने के दुख से निजात और संरक्षण समाप्ति (सुख-सुविधाओं की समाप्ति) का कारण प्राप्त करते हैं।

जोधपुर हुकूमत री बही के अनुसार महाराजा जसवंतसिंह के निधन के बाद मुगल बादशाह औरंगजेब द्वारा जोधपुर राज्य की खालसा घोषित कर मुगल राज्य में दिया गया था। मारवाड़ राज्य पर मुगल अधिकार बहाली के लिए आए मुगल अधिकारी नवाब के जोधपुर के नजदीक आने की सूचना पाकर पटरानी जसवंतदेवी हाड़ी, चौहान रानी जसरूप और अतिसुखदेवी देवड़ी ने दासी रूप धारण कर लिया था। दासी भेष में ये महल से उतर कर रामपोल तक आ गई थी। राठौड़ राजलोक के गढ़ से नीचे आने के समाचार पाकर सरदार सोनगजी ने तुरन्त सभी रानियों को राठौड़ इज्जत और शान के नाम पर रामपोल के पास आकर रोक लिया था। रात्रि हो जाने के कारण राजलोक को वडारन गंगा के घर पर रखा था। अगली सुबह सुरक्षा का वचन देकर गढ़ में लौटा दिया था। सुरक्षा कारणों से देवड़ी और चौहान रानी, जादम रानी पुत्र के जन्म लेने तक भाटी गोयंददास के घर में रही थी।[17] इस घटना को देने का कारण पटरानी जसवंतदेवी हाड़ी है। यह वही रानी है, जिसने महाराजा जसवंतसिंह के धरमत युद्ध से पराजित होकर जोधपुर वापस आने पर किले के द्वार बंद करवा दिए थे। हाड़ी रानी ने अपने मान-सम्मान के मुद्दे के नाम पर महाराज को बनावटी व्यक्ति की संज्ञा देकर सती होने का दृश्य उत्पन्न कर दिया था। महाराज द्वारा काफी मिन्नतों के बाद रानी ने द्वार खोलने का हुक्म दिया था।[18] इस घटना को बर्नियर तक ने अपने यात्रा-संस्मरण में विवरण सहित लिखा है।[19] स्पष्टतया इस जुनुनी परम्परा की आड़ में रानियाँ सती परम्परा का अपनी हितपूर्ति और स्वेच्छी व्यवहार के तहत कार्यान्वित करती थी।

जोधपुर हुकूमत बही अनुसार महाराजा जसवंतसिंह के पीछे गर्भवती कछवाही रानी ने सती होने की जिदद् की थी। राठौड़ सरदार उदयसिंह ने गर्भवती रानी के हठ पर कहा, आपके सती होने से पहले हम 10 राजपूत जलेंगे तभी आप सती होंगी।[20] इस प्रकार हम देखते हैं कि, कछवाही रानी अच्छी तरह से जानती थी कि, गर्भवती होने के कारण और उत्तराधिकारी पुत्र लालसा में राठौड़ सरदार सती नही होने देंगे, तब भी रानी ने सती होने की बात कहकर राठौड़ सरदारों की इज्जत और मारवाड़ी प्रजा में सहानुभूति व यश प्राप्त किया था।

साहित्यिक ग्रन्थ राजरूपक के अनुसार सत्ता लालसा में कंवर अभयसिंह ने पिता महाराज की हत्या करवा दी थी। महाराज की अर्थी संग सतियों की सवारी में महाराजा अभयसिंह की माता चौहान रानी के शामिल होने पर सरदारों ने रोका, तो चौहान रानी ने पति बिना थोड़े दिन भी जीना धिक्कार (संतान की उपेक्षा और उनके स्वेच्छाचारी व्यवहार को छुपाया) कहा था।[21] इसी प्रकार महाराजा भीमसिंह के स्वर्गवास बाद सती होने वाली रानियों में से देवड़ी रानी ने सरदारों को कहा था कि, आप लोगों ने महाराज की मृत्यु छुपाकर क्यों रखी। मैं महाराज को सती होने की इच्छा जतलाकर क्षत्राणी राजपूत कन्या होने का परिचय देती। मारवाड़ री ख्यातानुसार महाराजा विजयसिंह के कंवर भोमसिंह की शीतला बीमारी से मृत्यु बाद चाँदकंवर भटियानी और चौहान रानी सती हुई थी। चौहान रानी ने नाजर गंगादास को

कहकर अपनी सती सवारी उसी मार्ग से निकलवाई थी, जिस राह से वह विवाह करके मेहरानगढ़ में आई थी। राणीमंगा भाट बहीनुसार महासती चाँदकंवर भटियानी और कंवर सरदारसिंह संग सती होने वाली रानी पन्नेकंवर तंवर के चाँदी के पतरों पर (हथ-फूल पहने उकेरित) हाथ नागणेचियाँ माता के मंदिर में सुरक्षित रखे हैं।[23] इस प्रकार हम देखते हैं कि, राठौड़ राजलोक ने स्वयं को सम्मानीय बनाने के लिए सती होते समय अलग-अलग रणनीतियों (वचन, कैद रिहाई और सती माता रूप) का उपयोग किया था।

मारवाड़ री ख्यातानुसार 1803 ई. में जयपुर के कछवाहा राजा प्रतापसिंह के निधन का समाचार जोधपुर आया था। करवा चौथ व्रत की पूजा करती बाई अभय कंवर को पति महाराज प्रतापसिंह के स्वर्गवासी होने की सूचना नाजर रामदास ने दी थी। बाई ने नाजर को सती होने की तैयारी करने को कहा था। बाई की माँ भटियानी रानी, पुत्री के सती होने के खिलाफ अड़ (राजनैतिक फायदे के तहत माँ-बेटी को कैद से रिहा करके महाराज भीमसिंह जोधपुर ने बाई का विवाह किया था) गई थी। रानी भटियानी ने महाराजा भीमसिंह को खूब गालियाँ दी थी, वृद्ध और बीमार राजा प्रतापसिंह से विवाह के कुछ समय बाद ही बाई के विधवा हो जाने के कारण), पर वे कुछ नहीं बोले थे। महाराजा भीमसिंह का बाई संग संवाद हुआ था जिसमें महाराज ने लड़की पर लांछन लगने की बात कही - (तू वीजैसिंघजी री पोती, म्हारी बैन जैपुर परणाई काई-कचाई लागै, तो इण में औरत रै लागै- तब बाई ने कहा भोली हूं म्हाराज के शरीर की दशा देखकर पाघ लेती आई थी। अभयकंवर बाई ने महासती का दर्जा प्राप्त करने के लिए अपनी चिता का घर यानि घर-सड़ा उखड़वाकर महाराज माता चाँदकंवर भटियानी के सती-स्थान पर रखवाया था।[24]

राठौड़ राजलोक की सती राजनीति और जुनून को देखने के बाद सती-सवारी और सती होने के दृश्य को भी जानना जरूरी है, तभी हम इस पूरे प्रकरण की सच्चाई और वास्तविकता की जीवंत तस्वीर देख पाएंगे। हकीकत खाता बहीनुसार विवाह के एक साल बाद 1803 ई. में विधवा होने पर अभयकंवर बाई ने बाड़ी के महल में जाकर स्नान करके कीमखाप का घाघरा पहना था। अबदार खाना से गंगाजल की सीसी और इत्र लेकर बाई महाडोल में बैठकर मंडोर गई थी। बाई की सवारी में धायभाई सिम्भुदान, व्यास, प्रोहित, ड्योढ़ीदार गोपालदास, धांधल केसोराव, जोशी, वेदिया, खवास पासवान (राठौड़ सरदार), नगाड़ा, असरफी, घोड़ाघुरी, निशान का हाथी, पातर-भगतण वगैरह थी। वडारन रुपया उछाल रही थी। राह में चांवडा माता के मंदिर में बाई ने अपने गहने अर्पित किए थे।[25] जबकि राठौड़ राजलोक सती सवारी से पहले गहने और अन्य सामान खजाना में जमा करवाती थी, फिर अपने दर्जे मुताबिक महाडोल में बैठकर मंडोर (जोधपुर के निकट मारवाड़ राज्य की पूर्व राजधानी जहाँ राजपरिवार के श्मशान हैं) पधारती थी। खवास, पासवान खुले केश घोड़ों पर सवार होती थी। सवारी समय पातर-भगतणों (नर्तकियों) के सोलमो गायन संग राज्य का बजता नगाड़ा, असरफी, घोड़ा घुरी, निसांण का हाथी चलते थे। रानियाँ मंडोर में पंथेवाड़ी माता की पूजा करके सोलमो (ढोल वजैता हे सखी पीये आयै मुज लैण, ढोल बंजंता मैं चली पीये को बदलो दैण) गवाती थी। फिर रानियाँ धीरे-धीर चिता की परिक्रमा करके घरवाड़ा सड़ों (घर के आकार में बने चिता) में जाकर बैठ जाती थी।[26] चिता ऊपर महाराज के पार्थिव शरीर को मखमल के गद्दे और तकिया लगाकर लिटाया जाता था। महाराज के सिर को रानी गोद (कई रानी होने पर उच्च वंश वाली रानी) में रखती थी, खवास, पासवान महिलाएँ सामने बैठती थी तथा दासी मोरछल से हवा करती थी। बाहर ढोल-नगाड़ों की तेज आवाज और गायणों के सोलमो गायन के बीच ब्राह्मण चिता को अग्नि देता था जिसके बीच रानी की चिल्लाहट दब कर रह जाती थी। दूसरा लकड़ियों और घास-फूस

से घर की आकृति में बनी चिता के जलकर ऊपर गिरने से भी रानियों की मौत हो जाती होगी। वे इस शोर-शराबे के बीच महानता की मूरत मानी जाती थी।

निष्कर्ष : अन्त में कहा जा सकता है कि, यह लेख जनाना ड्योढ़ी की विसंगतियों और विवादास्पद रहस्यों के कई पक्षों को उजागर करता है जिसमें से एक रानियों का विधवा रूप में जीवन के कड़वे सच भोगना और दूसरा सती होकर महानता की प्रतीक बनकर लोक किंवदितियों में जिंदा रहना था। तीसरा, सती परम्परा का अनुसरण करके राजघराना महिलाएँ अपने राजनैतिक हितों के तहत पेशेवर राजनीतिज्ञ की तरह व्यवहार करती थी अर्थात अपने पुत्रों और ठिकाना - कन्या अपने भाई-बन्धुओं के राजशी संरक्षण के निरन्तरता प्रदान करती थी। जिससे हम राठौड़ राजलोक की असल महत्वकांक्षा और राजनीतिज्ञ रूप सती होते समय स्वयं को प्रजा की लोक कल्याणकारी, ममतामयी माता और महान निष्ठावान पत्नी के रूप में प्रस्तुती देने के रूप में पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष राजा पर हावी होते देखते हैं। जिससे वे इतिहास में सती माता के रूप में बही-ग्रन्थों और कहानियों एवं मिथकों में जिंदा हैं।

संदर्भ

1. मुहणौत नैन्सी, मारवाड़ परगना री विगत, भाग 1, संपा, नारायणसिंह भाटी, (जोधपुरः राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1968), पृष्ठ संख्या, 559-63। **2.** राठौड़ राव सिहा का सती स्मारक लेख, संपा. गोविन्दलाल श्रीमानी राजस्थान के अभिलेख, भाग1, पृष्ठ संख्या, 235-28। **3.** मारवाड़ री ख्यात, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 8-9 और मुहणौत नैन्सी, मारवाड़ परगना री विगत, भाग1 पृष्ठ, 563। जोधपुर गढ़ में हरकाबाई सती नाम का मंदिर भी है। मारवाड़ी जनसमाज और राठौड़ राजलोक विवाह, मृत्यु और त्योहार समय इनकी पूजा अर्चना करके चढ़ावा अर्पित करते हैं। **4.** मुरारीदान री ख्यात, संपा, विक्रमसिंह भाटी, पृष्ठ, 54 और राठौड़ां री ख्यात, भाग1 संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 52। **5.** राणीमंगा भाटों की बही, संपा, महेन्द्रसिंह नगर, पृष्ठ संख्या, 27-32, मुरारीदान री ख्यात, संपा, विक्रमसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 73-95 और राठौड़ां री ख्यात, भाग 1 संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 97-113। राव मालदेव से लेकर मोटा राजा उदयसिंह की रानियों ने भगवान श्री कृष्ण की चरण वंदना में जीवन समर्पित कर दिया था। इससे हम अंदाजा लगा सकते हैं कि, इन रानियों का जीवन कितना कठिन होगा। शाही महल और सुख-सुविधा त्यागना विवशता होती थी, न कि मनमर्जी। **6.** बाँकीदास री ख्यात, संपा, जिनविजय मुनि, पृष्ठ, 18, राठौड़ां री ख्यात भाग 1 संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या 101-02 और मूदियाड़ री ख्यात संपा, विक्रमसिंह भाटी, पृष्ठ, 46। राव चन्द्रसेन द्वारा राठौड़ जैतमाल जैसावत या चांपावत की विनती अस्वीकार कर चाकर की हत्या कर दी गई थी। जिसके कारण जैतमाल ने कंवर राम और उदयसिंह को पत्र लिखकर राव चन्द्रसेन से राज्य हस्तगत करने को कहा था। इस प्रकार जोधपुर में भाइयों के बीच राज्याधिकार को लेकर गृहयुद्ध आरम्भ हुआ था। **7.** राणीमंगा भाटों की बही, संपा, महेन्द्रसिंह नगर, पृष्ठ 24 और मूंदियाड़ री ख्यात संपा, विक्रमसिंह भाटी, पृष्ठ 47. कंवर राम माता की आधी जलती चिता छोड़कर राज्य पर अधिकार जमाने के लिए चल दिया था। इसलिए रानी ने सौत-पुत्र के पक्ष में पति का घर न त्यागने की बात कही थी। कंवर माता के क्षमा मांगने पर ठिकाना मिल जाने की बात कही थी। **8.** मुरारीदान री ख्यात संपा विक्रमसिंह भाटी, पृष्ठ 109, राणीमंगा भाटों की बही संपा, महेन्द्रसिंह नगर, पृष्ठ 43. मूदियाड़ री ख्यात संपा, विक्रमसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 86-87 और राठौड़ां री ख्यात भाग1 संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 197-98. पंचोली बलू ने महाराज के मृत्यु-दुख में रिहा होने से मना कर दिया था। महाराजा जसवंतसिंह ने दिल्ली में ताजपोशी के समय पंचोली बलु को बुलाकर मुल्क बंदोबस्त का काम सौंपा था। **9.** मूदियाड़ री ख्यात संपा, विक्रमसिंह भाटी, पृष्ठ, 253 और राठौड़ां री ख्यात, भाग II संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 522. सती होते समय राठौड़ राजलोक कैद में पड़े उमरावों और सरदारों को रिहा करवाकर अपनी छवि को चमकाती थी। **10.** राजरूपक संपा, रामकर्ण, (काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, 1941), पृष्ठ, 49 और राठौड़ां री ख्यात भाग II संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 485. महाराजा अजीतसिंह की

रानियों ने सती होते समय खूब दान-पुण्य किया था। महाराजा अभयसिंह की सती रानियों ने 3000 रुपया खैरायत में बांटा था। **11.** महाराजा अभयसिंह री ख्यात, ग्रन्थाक नंः 15659, पत्र संख्या, 310-11 और मारवाड़ री ख्यात, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 2। **12.** महाराजा श्री विजयसिंह री ख्यात, संपा, ब्रजेश कुमार सिंह, पृष्ठ, 94 और राठौड़ां री ख्यात, भाग III, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 599-600, भंगी और मंदिर ने कंवर की रखैलों के गहने दान-पुण्य और धर्म-कर्म के नाम पर स्वीकार करने से मना कर दिया था। **13.** मारवाड़ री ख्यात, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 165। **14.** जोधपुर हुकूमत री बही, संपा, सतीशचंद्र, रघुबीरसिंह और जी.डी. शर्मा, पृष्ठ संख्या, 76 और राणीमंगा भाटों की बही, संपा, महेन्द्रसिंह नगर, पृष्ठ, 48. जलती चिता में कूदने पर मृत्यु प्राप्त पूरबिया कल्याण की महाराज संग अलग चिता सजाई गई थी। **15.** राठौड़ां री ख्यात, भाग II, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 424-25। **16.** मारवाड़ री ख्यात, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 5-165 और राठौड़ां री ख्यात, भाग I,II,III संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 128-688. रानियों की वडारन और दासियाँ खालसा होने और निर्वासित जीवन दंश से बचने के लिए रानी संग सती हो जाती थी, क्योंकि ये रानी संग उनके पीहर से आती थी। रानी का संरक्षण समाप्त और वास्तविक जीवन परिस्थिति प्रकट हो जाती थी। **17.** जोधपुर हुकूमत री बही संपा, सतीशचंद्र, रघुबीरसिंह और जी.डी. शर्मा, पृष्ठ संख्या, 94-98। **18.** कविराज श्यामलदास, वीर-विनोद, भाग II, पृष्ठ संख्या, 824-25 और मारवाड़ री ख्यात, संपा. हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 7. महाराजा जसवंतसिंह ने हाड़ी रानी के व्यवहार से दुखी होकर हाड़ाओं से विवाह संबंध समाप्त किए थे। हाड़ी रानी ने विधवा रूप में पीहर में रहकर प्राण त्यागे थे। **19.** फ्रांसिको बर्नियर, ट्रेवल इन द मुगल अम्पायर ए. डी. 1656-68. अनु, विन्सेंठ स्मिथ, पृष्ठ संख्या, 40-1 और महाकवि श्यामलदास, वीर-विनोद भाग III पृष्ठ 824। **20.** जोधपुर हुकूमत री बही, संपा, सतीशचंद्र, रघुबीरसिंह और जी.डी. शर्मा, पृष्ठ, 76. राठौड़ सरदार रणछोड़दास गोयन्दास, संग्रामसिंह, चांपावत सूरजमल, कुंपावत नाहरखान, ऊदावत राजसिंह, जैतावत प्रतापसिंह, चांपावत उदयसिंह, करणोत दुरगदास आदि ने दोनों रानियों को पुत्र होने तक रुकने को कहा था। रानी के हठ को देखकर सरदारों ने कहा, जीव हत्या के दोष में पहले हम 10 राजपूत जलेंगे। **21.** राजरूपक, संपा, रामकर्ण, पृष्ठ संख्या, 48-49. सवाई जयसिंह ने कंवर अभयसिंह को भड़काकर सत्ता लोभ देकर महाराज की बख्तसिंह के हाथों हत्या करवा दी थी। चौहान रानी को सरदारों ने महाराज अभयसिंह की राजमाता कहकर सती होने से रोका था। **22.** मारवाड़ री ख्यात संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 165। राणीमंगा भाटों की बही, संपा, महेन्द्रसिंह नगर, पृष्ठ संख्या, 66 और मारवाड़ री ख्यात, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 65। **23.** मारवाड़ री ख्यात, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 14। **24.** हकीकत खाता बही, वि.स. 1821-1930, बही नंः 2. पत्र संख्या, 105. बाई के सती होने पर 933 रुपये रोकड़, 218 टका, 125 गायें, 1000 मण धान, 500 मण बाजरा नागौर का, 500 मण गेहूँ जैतारण के दान किए गए थे। **25.** राजरूपक, संपा, रामकर्ण, पृष्ठ. 49, राणीमंगा भाटों की बही, संपा, महेन्द्रसिंह नगर, पृष्ठ, 72, हकीकत खाता बही, वि.स. 1821-1930, बही नंः 2. पत्र संख्या, 105 और मारवाड़ री ख्यात, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 165. महाराजा मानसिंह के पीछे एकमात्र देवड़ी रानी अजनकंवर सती हुई थी। देवड़ी रानी की प्रंशसा में चारणों ने गीत गाया था। दुले पतीव्रत देवड़ी रंग सती रिझवार। मुजरो कियो मानू सूं लीदा दासीला।। **26.** महाराजा तख्तसिंह री ख्यात पृष्ठ 2. सती रानियों में से पदानुक्रम अनुसार रानी को महाराज का सिर गोद में रखने का अधिकार होता था। पटरानी और मर्जीदान रानी के सती होने पर यह हक इनका होता था अर्थात पटरानी सती नहीं होती तो मर्जीदान रानी को, मर्जीदान रानी के भी सती न होने पर पीहर राजवंश के दर्जे के अनुसार रानी को स्वर्गवासी पति के सिर को गोद में रखने का अधिकार मिलता था।

पॉकेट ए, फैक्टी नंः 53, सेक्टर 2,
डीएसआईआईसी इंडस्ट्रीयल एरिया
बवाना, नई दिल्ली-110039
मो. 9599560417

●

उत्तर-पूर्व भारत में भौगोलिक-जैव विविधता और विकास

डॉ. इयाहईया आलहुदा

परिचय - भारत का पूर्वोतर क्षेत्र, जिसे अक्सर सेवन सिस्टर स्टेट्स के रूप में जाना जाता है, जो अब आठ सिस्टर है अर्थात् आठ राज्यों अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा का समूह करता है। इस क्षेत्र की विशेषता इसके हरे-भरे जंगल, प्रचुर वन्य जीवन और विविध जातीय समुदाय हैं। इन प्राकृतिक संपदाओं के बावजूद, यह भारत के सबसे कम विकसित क्षेत्रों में से एक है, जो आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण से जूझ रहा है। विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन हाल के दिनी में एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय बन गया है, जिससे नाजुक पारिस्थितिकी प्रणालियों (अल हुदा 2024) के लिए खतरों का मुकाबला करने के लिए सतत संतुलित विकास रणनीतियों की आवश्यकता है।

अद्वितीय वनस्पति और जीव

भारत का उतर पूर्वी क्षेत्र पौधों और जानवरों की कई प्रजातियों का घर है जो दुनिया में कहीं और नहीं पाई जाती है। द्रष्टव्य- ए (तालिका-1 और 2)।

तालिका - 1 : वनस्पति और जीव विविधता

पुष्प विविधता	**कुल**	7500
	आर्किड	700
	साइट्रस	64
	कोनिफर	28
	बांस	58
	फर्न्स	700
	कई	500
जीव विविधता	कीड़े	3624
	घोंघे	50

	मछली	236
	पक्षियों	850
	स्तनधारियों	160
	उभयचर	64
	सरीसृप	137

तालिका - 2 : वैश्विक, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर पौधों और पशु विविधता

समूह	विश्व में प्रजातियों की संख्या	भारत में प्रजातियों की संख्या	विश्व में प्रजातियों का प्रतिशत	उत्तर पूर्व में प्रजातियों की संख्या
स्तनधारियों	4629	350	7.6	160
पक्षियों	9702	1224	12.6	850
उभयचर	4522	197	4.4	64
सरीसृप	6550	408	6.2	137
मछली	21730	2546	11.7	236
फूलों वाले पौधे	250000	15000	.6	7500

यहाँ पाई जाने वाली कुछ अनोखी प्रजातियों में एक सींग वाला गैंडा, हूलॉक गिब्बन, लाल पांडा और भारतीय हाथी शामिल हैं। इनमें से कई प्रजातियाँ आवास विनाश, अवैध शिकार और अन्य मानवीय गतिविधियों के कारण अत्यधिक संकटग्रस्त हैं। क्षेत्र में संरक्षण प्रयासों में इनमें से कुछ प्रजातियों के पुनरुद्धार में मदद की है, लेकिन उनके भविष्य की सुरक्षा के लिए अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है (सेन 2000, डेका एट अल 2010)।

जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन पूर्वोतर भारत के नाजुक पारिस्थितिकी तंत्रों के लिए काफी चुनौतियां पेश करता है। यह क्षेत्र तापमान और वर्षा पैटर्न में परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है, जिसके परिणामस्वरूप बाढ़ और भूस्खलन जैसी चरम मौसम की घटनाओं की आवृति और तीव्रता में वृद्धि होती है। बढ़ते तापमान से पौधों और जानवरों की पेनोलॉजी भी बाधित होती है, जिससे परागण और भोजन चक्र में असंतुलन पैदा होता है। पूर्वी हिमालय में ग्लेशियर पिघलने से स्थानीय जल उपलब्धता और ग्लेशियर से पोषित नदियों पर निर्भर समुदायों की आजीविका दोनों प्रभावित होती है। ये प्रभाव न केवल क्षेत्र की जैव विविधता को खतरे में डालते हैं बल्कि इसके निवासियों की भलाई और अस्तित्व को भी खतरे में डालते हैं (बेट्स एट अल 2008)।

क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के लिए व्यापक अनुकूलन और शमन रणनीतियों की आवश्यकता है। इसमें जलवायु-लचीला बुनियादी ढांचा विकसित करना, सौर और पवन ऊर्जा जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को बढ़ावा देना और सूखे और बाढ़ के प्रभावों को कम करने के लिए जल प्रबंधन तकनीकों को लागू करना शामिल है। इन

उपायों को प्रभावी ढंग से तैयार करने और लागू करने में क्षेत्रीय सरकारों, वैज्ञानिक संस्थानों और स्थानीय समुदायों के बीच सहयोग महत्वपूर्ण है।

प्रदूषण

वायु और जल गुणवत्ता दोनों के सदर्भ में प्रदूषण उत्तर पूर्व भारत में बढ़ती चिंता का विषय है। तेजी से बढ़ते शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण हवा में हानिकारक प्रदूषक निकलते हैं, जिससे श्वसन संबंधी समस्याएं होती हैं और मौजूदा स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं और भी गंभीर हो जाती हैं। जीवाश्म ईंधन के जलने से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है, जिससे जलवायु परिवर्तन और भी गंभीर हो जाता है। इसके अलावा, ब्रह्मपुत्र और बराक सहित क्षेत्र की नदियाँ औद्योगिक अपशिष्ट निर्वहन, शहरी अपवाह और कृषि प्रदूषण से ग्रस्त हैं, जो जलीय पारिस्थितिकी तंत्र और मनुष्यों और वन्यजीवों दोनों के लिए स्वच्छ जल की उपलब्धता पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

प्रदूषण नियंत्रण उपायों में पर्यावरण संबंधी नियमों का सख्ती से पालन, उद्योगों द्वारा स्वच्छ तकनीकों को अपनाना और स्थायी अपशिष्ट प्रबंधन प्रथाओं को बढ़ावा देना शामिल होना चाहिए। सार्वजनिक परिवहन को प्रोत्साहित करना, वायु गुणवत्ता पर जागरूकता अभियान को बढ़ावा देना और व्यक्तियों को पर्यावरण के अनुकूल जीवन शैली अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना वायु प्रदूषण को कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। इसी तरह, अपशिष्ट जल उपचार संयंत्रों को लागू करना, उद्योगों से निर्वहन को विनियमित करना और जैविक खेती प्रथाओं को बढ़ावा देना जल प्रदूषण से निपटने में मदद कर सकता है।

वनों की कटाई

उत्तर पूर्व भारत में सबसे बड़ी पर्यावरणीय चुनौतियों में से एक है बड़े पैमाने पर वनों की कटाई। वन जैव विविधता को बनाए रखने, जलवायु को विनियमित करने और स्वदेशी समुदायों के लिए आजीविका के अवसर प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालांकि, कृषि विस्तार, कटाई और बुनियादी ढाँचे के विकास के लिए बड़े पैमाने पर वनों की कटाई से वन क्षेत्र में व्यापक कमी आई है। यह विनाश न केवल अनगिनत प्रजातियों के आवास को कम करता है, बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र के कार्यों को भी बाधित करता है और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के लिए क्षेत्र की भेद्यता को बढ़ाता है।

समुदाय-आधारित वन प्रबंधन प्रणालियों की स्थापना, टिकाऊ कृषि और कृषि-वानिकी प्रथाओं को प्रोत्साहित करने और अवैध कटाई और अतिक्रमण पर कड़े नियमों को लागू करने के माध्यम से वनों की कटाई पर अंकुश लगाया जा सकता है। वन प्रशासन को मजबूत करना, स्वदेशी समुदायों के भूमि स्वामित्व अधिकारों और उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में शामिल करना वनों के प्रभावी संरक्षण और बहाली में योगदान दे सकता है।

पिछले दस वर्षों के दौरान पूर्वोतर क्षेत्र के बन कवरेज में बदलाव देखा गया है (तालिका-3)

तालिका-3 : पूर्वोतर भारत में भौगोलिक एवं वन क्षेत्र

राज्य	2001 में वन क्षेत्र (क्षेत्रफल वर्ग कि.मी.)	वन आवरण क्षेत्र का प्रतिशत 2001	2011 में वन क्षेत्र (क्षेत्रफल वर्ग कि.मी.)	वन क्षेत्र परिवर्तन, 2001-2011 (क्षेत्रफल वर्ग कि.मी.)
अरुणाचल प्रदेश	68,045	80.2	67,410	-635

असम	27,714	35.3	27,673	-41
मणिपुर	16,926	75.8	17,090	164
मेघालय	15,584	69.4	17,275	1691
मिजोरम	17,494	82.9	19,117	1623
नागालैंड	13,345	80.4	13,318	-27
सिक्किम	3,193	45.1	3,359	166
त्रिपुरा	7,065	67.3	7,977	912
कुल	1,69,366	64.3	1,73,219	3853

स्रोत : भारतीय वन सर्वेक्षण

अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर और असम में नकारात्मक परिवर्तन बताते हैं कि यहाँ के वनों का क्षरण हो रहा है। ये परिवर्तन चराई, जंगल की आग, जंगल के विखंडन और लकड़ी के लिए जंगल के दोहन, झूम खेती चक्र में कमी और वनों के प्रबंधन के लिए गैर-वैज्ञानिक तरीकों के उपयोग के कारण हो सकते हैं। राज्यों के बीच वन संसाधनों की बहाली, संरक्षण और पुनःपूर्ति मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, सिक्किम और त्रिपुरा में देखे गए अनुकूल परिवर्तनों से संकेतित होती है। इन समाजों की सामाजिक, संस्थागत, सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताएँ, जो अपने जंगलों के एक बड़े हिस्से को पवित्र मानते थे और उनका सम्मान करते थे, इन अच्छे परिवर्तनों के लिए योगदान दे सकते हैं।

वनों की कटाई पूर्वोत्तर भारत के पर्यावरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख मुद्दों में से एक है। यह क्षेत्र दुनिया के कुछ सबसे विविध वनों का घर है, जिनमें उष्णकटिबंधीय वर्षावन, उपोष्णकटिबंधीय चौड़ी पत्ती वाले वन और शंकुधारी वन शामिल हैं। हालांकि, बड़े पैमाने पर कटाई और कृषि उद्देश्यों के लिए वन भूमि के रूपांतरण ने इस क्षेत्र में वनों की कटाई को बढ़ावा दिया है। भारतीय वन स्थिति रिपोर्ट, 2019 की एक रिपोर्ट के अनुसार, 2013-2019 के बीच पूर्वोतर भारत ने लगभग 1.5 मिलियन हेक्टेयर वन क्षेत्र खो दिया है। इससे न केवल वन्यजीवों के लिए आवास का नुकसान हुआ है, बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र का नाजुक संतुलन भी बिगड़ गया है।

उत्तर पूर्व भारत में पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने के लिए, आगे की कार्रवाई करना और विशिष्ट सिफारिशों को लागू करना महत्वपूर्ण हैः

1. पर्यावरण कानूनों और विनियमों को मजबूत करें : जैव विविधता संरक्षण, जलवायु परिवर्तन शमन, प्रदूषण नियंत्रण और वन प्रबंधन से संबंधित मौजूदा कानूनों को लागू करें। इसके अतिरिक्त, नए कानून विकसित करें जो क्षेत्र के लिए विशिष्ट उभरते पर्यावरणीय मुद्दों को संबोधित करते हैं।

2. अनुसंधान और डेटा संग्रह को बढ़ावा दे : स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र, प्रजातियों के वितरण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को बेहतर ढंग से समझने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान में निवेश करें। यह साक्ष्य-आधारित निर्णय लेने और प्रभावी नीति निर्माण के लिए महत्वपूर्ण डेटा प्रदान करेगा।

3. संधारणीय कृषि और जिम्मेदार भूमि उपयोग को प्रोत्साहित करें : रासायनिक इनपुट पर निर्भरता

को कम करने, मिट्टी के कटाव को रोकने और मूल्यवान आवासों की रक्षा करने के लिए जैविक खेती प्रथाओं, कृषि-न्यानिकी और संधारणीय भूमि उपयोग तकनीकों को बढ़ावा दें।

4. समुदाय-संचालित संरक्षण पहलों का समर्थन करें : स्थानीय समुदायों को संरक्षण प्रयासों में शामिल करके और प्राकृतिक संसाधनों पर उनके अधिकारों को मान्यता देकर उन्हें सशक्त बनाएँ। समुदायों को संधारणीय संसाधन प्रबंधन में सक्रिय रूप से भाग लेने में सक्षम बनाने के लिए प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण कार्यक्रम प्रदान करें।

5. इकोटूरिज्म और प्रकृति-आधारित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा है : क्षेत्र की अनूठी जैव विविधता को उजागर करने वाले पर्यावरण के अनुकूल पर्यटन अवसरों का विकास और विपणन करें। यह पर्यावरण संरक्षण के महत्व के बारे में जागरुकता बढ़ाते हुए स्थानीय समुदायों के लिए वैकल्पिक आजीविका विकल्प बना सकता है।

6. पर्यावरण पहलों के लिए धन बढ़ाएँ : संरक्षण परियोजनाओं, अनुसंधान और क्षमता निर्माण कार्यक्रमों का समर्थन करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन आवंटित करें। सरकारी धन के पूरक के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और दाताओं से योगदान लें।

7. सीमा पार सहयोग को मजबूत करना : वन्यजीव तस्करी, नदी जल बंटवारा और पारिस्थितिकी तंत्र संरक्षण जैसे सीमा पार पर्यावरणीय मुद्दों को हल करने के लिए पड़ोसी देशों के बीच सहयोग और जान साझा करने के लिए मंचों की स्थापना करना।

8. जलवायु परिवर्तन अनुकूलन उपायों को लागू करना : सिंचाई सुविधाओं में सुधार, सूखा और बाढ़ प्रतिरोधी फसल किस्मों को बढ़ावा देने और आपदा तैयारी योजनाओं को बढ़ाने जैसी अनुकूलन रणनीतियों को विकसित और लागू करना।

9. जन जागरुकता और शिक्षा बढ़ाएँ : पर्यावरण संरक्षण और संधारणीय प्रथाओं के महत्व के बारे में जनता को सूचित करने के लिए जागरुकता अभियान, कार्यशालाएँ और शैक्षिक कार्यक्रम आयोजित करें। स्कूली पाठ्यक्रम और सामुदायिक आउटरीच कार्यक्रमों के माध्यम से पर्यावरण-साक्षरता को बढ़ावा दें।

10. अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा दें : जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता संरक्षण और संधारणीय विकास से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय मंचों और समझौतों में शामिल हों। स्थानीय प्रयासों को मजबूत करने के लिए वैश्विक संगठनों के साथ तकनीकी सहायता और सहयोग की तलाश करें।

इस क्षेत्र के स्थानीय समुदायों द्वारा रखे गए पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान को संरक्षण रणनीतियों में एकीकृत करना महत्वपूर्ण है। स्वदेशी लोग पीढ़ियों से प्रकृति के साथ सद्भाव में रहते आए हैं और उनके पास स्थायी संसाधन प्रबंधन पर बहुमूल्य अंतदृष्टि है। निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में उनकी सक्रिय भागीदारी और पैतृक भूमि पर उनके अधिकारों की मान्यता प्रभावी संरक्षण को बढ़ावा दे सकती है और इन समुदायों की समग्र भलाई को बढ़ा सकती है।

कार्यान्वित संरक्षण उपायों को प्रभावशीलता का आकलन करने के लिए निरंतर निगरानी और मूल्यांकन कार्यक्रम आवश्यक हैं। नियमित मूल्यांकन अंतराल की पहचान करने और तदनुसार रणनीतियों को संशोधित करने में मदद कर सकते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि प्रयास लक्षित हैं और सकारात्मक परिणाम देते हैं।

पूर्वोतर भारत में विकास संबंधी चुनौतियाँः आजीविका, पारिस्थितिकी पर्यटन और सतत विकास

उत्तर पूर्वी भारत क्षेत्र में विशेष रूप से आजीविका कृषि उद्योग और पारिस्थितिकी पर्यटन जैसे क्षेत्रों में विकास की अपार संभावनाएँ हैं। सरमा

(2018) के अनुसार इस क्षेत्र की विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियों कृषि विकास और खाद्य सुरक्षा के अवसर प्रदान करती हैं। जैविक खेती और कृषि वानिकी जैसे सतत आजीविका विकल्पों को बढ़ावा देने से पर्यावरण को संरक्षित करते हुए इस क्षेत्र के आर्थिक विकास में योगदान मिल सकता है। इसके अलावा इस क्षेत्र की समृद्ध जैव विविधता और सुंदर परिदृश्य इसे पारिस्थितिकी पर्यटन के लिए एक आकर्षक गंतव्य बनाते हैं जो रोजगार के अवसर पैदा कर सकता है और संरक्षण प्रयासों को बढ़ावा दे सकता है (दास एट अल. 2021)। हालांकि यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि स्थानीय समुदायों की ज़रूरतों और आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए विकास गतिविधियाँ एक सतत और समावेशी तरीके से की जाएँ।

आजीविका के मुद्दे :

1. बुनियादी ढांचे और कनेक्टिविटी की कमी : पूर्वोतर भारत में आजीविका के विकास में सबसे बड़ी बाधा खराब बुनियादी ढांचा और कनेक्टिविटी है। इस क्षेत्र का दुर्गम इलाका, अपर्याप्त रूप से विकसित सड़क नेटवर्क और बाजारों तक सीमित पहुंच स्थानीय आबादी के लिए आजीविका के अवसरों में बाधा डालती है। सड़क, पुल और परिवहन प्रणाली जैसे बुनियादी ढांचे में सुधार के लिए निवेश बेहतर कनेक्टिविटी की सुविधा प्रदान कर सकता है और आजीविका की संभावनाओं को बढ़ा सकता है। पूर्वोतर में आर्थिक विकास के प्रमुख चालकों में से एक बुनियादी ढांचे में सुधार है। यह क्षेत्र पूर्वोतर सीमांत रेलवे के माध्यम से शेष भारत से जुड़ा हुआ है, जिसने व्यापार और वाणिज्य के लिए नए रास्ते खोले हैं। सरकार ने भारतमाला परियोजना और पूर्वोतर के लिए विशेष त्वरित सड़क विकास कार्यक्रम जैसी परियोजनाओं के माध्यम से क्षेत्र में सड़क संपर्क में सुधार के लिए पहल की है। इन विकासों ने न केवल परिवहन को आसान बनाया है, बल्कि उद्योगों के लिए इस क्षेत्र में अपना व्यवसाय स्थापित करने के नए अवसर भी खोले हैं।

उत्तर पूर्व प्राकृतिक संसाधनों का भंडार है, लेकिन बुनियादी ढांचे और तकनीकी प्रगति की कमी के कारण, इसकी क्षमता काफी हद तक अपयुक्त रही है। हालांकि, पूर्वोतर परिषद (एनईसी) की मदद से सरकार ने इस क्षेत्र में उद्योगों को बढ़ावा देने और विकसित करने के लिए कदम उठाए हैं। इससे कृषि, बागवानी, पर्यटन और जैव प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों के विकास के साथ अर्थव्यवस्था में गति आई है। यह क्षेत्र अब चाय, रबर और बांस जैसी फसलों का उत्पादन कर रहा है, जिनकी बाजार में उच्च मांग है और जो इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

2. बेरोजगारी और अल्परोजगार : बेरोजगारी और अल्परोजगार की उच्च दर पूर्वोतर भारत के लोगों के सामने एक और गंभीर मुद्दा है। सीमित रोजगार के अवसर, विशेष रूप से औपचारिक क्षेत्र में, कई व्यक्तियों को कम वेतन वाली या असंवहनीय आजीविका गतिविधियों में संलग्न होने के लिए मजबूर करते हैं। कौशल विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना, उद्यमशीलता को बढ़ावा देना और रोजगार सृजन के अवसर पैदा करना इस चुनौती का समाधान कर सकता है।

3. कृषि पद्धतियाँ और भूमि क्षरण : इस क्षेत्र में प्रचलित पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ अक्सर असंवहनीय होती हैं और भूमि क्षरण में योगदान करती हैं। जैविक खेती की तकनीकों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना, टिकाऊ भूमि उपयोग प्रथाओं को बढ़ावा देना और किसानों को प्रशिक्षण और सहायता प्रदान करना टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने और ग्रामीण आजीविका में सुधार करने में मदद कर सकता है।

इकोटूरिज्म विकास

1. इकोटूरिज्म की संभावना : उत्तर पूर्व क्षेत्र प्रकृति प्रेमियों और रोमांच चाहने वालों के लिए एक

खजाना है। बर्फ से ढके पहाड़ों से लेकर घने जंगलों और झरनों तक के विविध परिदृश्य इसे इकोटूरिज्म के लिए एक आदर्श गंतव्य बनाते हैं। इस क्षेत्र में जिम्मेदार, पर्यटन से महत्वपूर्ण राजस्व उत्पन्न करने की क्षमता है, जो इसके प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में भी योगदान दे सकता है। हालांकि, क्षेत्र के नाजुक पारिस्थितिकी तंत्र पर किसी भी नकारात्मक प्रभाव को रोकने के लिए पर्यावरण की दृष्टि से टिकाऊ तरीके से इको-टूरिज्म किया जाना चाहिए।

प्रभावी उपायों और सहयोगात्मक प्रयासों से हम उत्तर पूर्व भारत की पारिस्थितिक विरासत की रक्षा और संरक्षण कर सकते हैं।

2. सामुदायिक भागीदारी और सशक्तिकरण : निर्णय लेने में स्थानीय समुदायों को शामिल करना और इकोटूरिज्म पहलों से लाभ उठाना उनकी स्थिरता के लिए आवश्यक है। क्षमता निर्माण कार्यक्रमों, प्रशिक्षण और कौशल विकास के माध्यम से पर्यटन परियोजनाओं का स्वामित्व लेने के लिए स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाना लाभों का समान वितरण सुनिश्चित कर सकता है और पर्यावरण और स्थानीय संस्कृति पर नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकता है।

3. बुनियादी ढांचा और आगंतुक प्रबंधन : आवास सुविधाओं, परिवहन नेटवर्क और आगंतुक प्रबंधन प्रणालियों जैसे बुनियादी ढांचे का विकास सतत पारिस्थितिकी पर्यटन विकास के लिए महत्वपूर्ण है। वहन क्षमता आकलन, अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियों और जिम्मेदार पर्यटन प्रथाओं के माध्यम से पर्यटन विकास को पर्यावरण संरक्षण के साथ संतुलित करने के लिए रणनीतियों की योजना बनाना और उन्हें लागू करना पूर्वोतर भारत में सतत पारिस्थितिकी पर्यटन को प्राप्त करने में मदद कर सकता है।

सतत विकास

1. नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतः पूर्वोत्तर भारत में जलविद्युत शक्ति, सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा जैसे नवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोतों के लिए विशाल अप्रयुक्त क्षमता है। इन संसाधनों को विकसित करने से जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम हो सकती है, जिससे ऊर्जा की जरूरतों को पूरा करते हुए सतत विकास में योगदान मिल सकता है।

पूर्वोतर क्षेत्र अक्षय ऊर्जा उत्पादन के केंद्र के रूप में भी उभरा है। इस क्षेत्र में जलविद्युत की अपार संभावनाएं है और इस क्षेत्र की ऊर्जा मांगों को पूरा करने के लिए इस क्षमता का उपयोग करने के प्रयास किए जा रहे हैं। सरकार सौर और पवन ऊर्जा के उपयोग को भी बढ़ावा दे रही है, जिसके कारण इस क्षेत्र में सौर और पवन ऊर्जा संयंत्रों की संख्या में वृद्धि हुई है। इससे न केवल ऊर्जा के पारंपरिक स्त्रोतों पर निर्भरता कम हुई है, बल्कि स्थानीय आबादी के लिए रोजगार के अवसर भी पैदा हुए हैं।

2. वन संरक्षण और सतत संसाधन उपयोग : पूर्वोतर भारत में सतत विकास के लिए वन संसाधनों का कुशल प्रबंधन महत्वपूर्ण है। समुदाय आधारित वन प्रबंधन को बढ़ावा देना, सतत कटाई प्रथाओं को प्रोत्साहित करना और गैर-लकड़ी वन उत्पादों पर आधारित आजीविका के अवसरों को बढ़ाना दीर्घकालिक पारिस्थितिक और आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित कर सकता है।

3. शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं को बढ़ाना : समग्र और सतत विकास के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में निवेश मौलिक है। गुणवतापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच में सुधार करके व्यक्तियों को सशक्त बनाया जा सकता है, कुशल कार्यबल तैयार किया जा सकता है और क्षेत्र के समय मानव विकास सूचकांक को बढ़ाया जा सकता है।

कनेक्टिविटी

उत्तर पूर्व, में आर्थिक विकास में योगदान देने वाला एक और महत्वपूर्ण कारक पड़ोसी देशों,

खासकर दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ बेहतर कनेक्टिविटी है। 2014 में सरकार द्वारा शुरू की गई एक्ट ईस्ट नौति के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में व्यापार और निवेश में वृद्धि हुई है। उत्तर पूर्वी क्षेत्र को अब दक्षिण पूर्व एशिया के प्रवेश द्वार के रूप में देखा जाता है और इससे छोटे और मध्यम उद्यमों का विकास हुआ है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिला है।

निष्कर्ष

जैव विविधता की हानि, जलवायु परिवर्तन, पदूषण और वनों की कटाई जैसी उत्तर पूर्व भारत की पर्यावरणीय चुनौतियों पर सभी हितधारकों से तत्काल ध्यान देने और ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। सुझाए गए कार्यों और सिफारिशों को लागू करके, नीति निर्माता, समुदाय और व्यक्ति क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा और स्थायी रूप से प्रबंधन करने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं।

समृद्ध जैव विविधता को संरक्षित करना, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करना, प्रदूषण के स्तर को कम करना और सतत विकास प्रथाओं को बढ़ावा देना न केवल उत्तर पूर्व भारत के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि अधिक टिकाऊ और लचीले भविष्य को प्राप्त करने की दिशा में वैश्विक प्रयासों के लिए भी महत्वपूर्ण है। आइए हम सामूहिक रूप से इस अनूठे क्षेत्र की रक्षा करने और आने वाली पीढ़ियों के लिए इसके पर्यावरणीय कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध हों।

निष्कर्ष के तौर पर, पूर्वोत्तर भारत में जल संसाधन, पर्यावरण और विकास एक दूसरे से बहुत गहराई से जुड़े हुए हैं। स्वच्छ पेयजल तक पहुँच, बाढ़ की समस्याएँ और पर्यावरण संबंधी मुद्दों जैसी क्षेत्र की चुनौतियों के लिए एकीकृत और टिकाऊ समाधान की आवश्यकता है। प्रभावी जल संसाधन प्रबंधन, जैव विविधता का संरक्षण और समावेशी विकास अभ्यास क्षेत्र के समय विकास और कल्याण में योगदान दे सकते हैं। नीति निर्माताओं, शोधकर्ताओं और समुदायों के लिए इन चुनौतियों का समाधान करने और एक टिकाऊ भविष्य के लिए पूर्वोतर भारत की क्षमता का दोहन करने के लिए मिलकर काम करना आवश्यक है।

संदर्भ

1. अग्रवाल, एस., सिंह, पी. के., और कुमार, एस. (2019)। एनवायरोंमेनटेल इम्पेकटस् एण्ड मेनेजमेंट स्ट्रेटजी फॉर सासटेंनेवल डेवलपमेंट इन नॉर्थ ईस्ट इंडिया, जर्नल ऑफ एनवायर्नमेंटल मैनेजमेंट, 235: 117-135। **2.** अल हुदा, ई. (2024)। वेलेंसिंन डी ब्लूः एनवायरमेंट एण्ड डेवलपमेंट इन नॉर्थ ईस्ट इंडिया, अल हुदा, ई. (संपादक) लैंड, वाटर एण्ड लाइव्लिहूद ईश्युस इन नॉर्थ ईस्ट इंडिया, एबीएस बुक्स, दिल्ली--110086: 1-30। **3.** बेट्स, बी.सी., कुंदज़ेविक्ज़, जेड.डब्ल्यू., वू, एस. और पलुटिकॉफ़, जे.पी. (संपादक) (2008)। क्लाइमेट चेंज एण्ड वाटर, जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल का तकनीकी पेपर, आईपीसीसी सचिवालय, जिनेवा, www.ipcc.ch/ipccreports/tp-climate-change-water.html। **4.** भगवती, ए. के., नाथ, टी. के. और दत्ता, पी. (2017)। डीफॉरेसस्ट्रेशन एण्ड इट्स इम्पेकटस् ऑन फॉरेस्ट इकोसिस्टम ऑफ नॉर्थ ईस्ट इंडिया, इंटरनैशनल जर्नल ऑफ एनवायरनमेंटल साइंसेज, 7(2): 187-193। **5.** चेट्री, एन., शर्मा, ई., शाक्य, बी.; थापा, आर.; बज्राचार्य, बी.; उद्दिन, के.; ओली, के.पी. और चौधरी, डी. (2010)। वायोडाईवरसिटी इन ही इस्टार्ण हिमालयाजः स्टेटस, ट्रेंड्स एण्ड वलनेरेविलिटी टू क्लाइमेट चेंज, क्लाइमेट चेंज इम्पेकट एंड वलनेरेविलिटी इन डी इस्टार्ण हिमालयाज; तकनीकी रिपोर्ट 2; आईसीआईएमओडीः काठमांडू, नेपाल। **6.** चेट्री, एन.; शर्मा, ई.; शाक्य, बी.; थापा, आर.; शर्मा, एम.; बज्राचार्य, बी.; उद्दिन, के.; ओली, के. दासगुप्ता, जे. और चौधरी, डी. (2008)। वायोडाईवरसिटी ऑफ डी इस्टार्ण हिमालयाजः ट्रेंड्स, पारसेपसोंन्स एंड इम्पेकटस् ऑफ क्लाइमेट चेंज। श्वेतपत्र 3 (अंतिम मसौदा): एसेसमेंट ऑफ क्लाइमेट चेंज वलनेरेविलिटी ऑफ डी माउंटेन इकोसिस्टमस ऑफ डी इस्टार्ण हिमालया।

आईसीआईएमओडी-मैकआर्थर परियोजना, काठमांडू । **7.** दास, डी., रॉय, ए., नाथ, के., और बरुआ, एस. (2021)। ईको-टूरिज्म पोटेंशियल ऑफ नॉर्थ ईस्ट इंडियाः ए रिव्यू, जर्नल ऑफ एनवायर्नमेंटल साइंस, टॉक्सिकोलॉजी एंड फूड टेक्नोलॉजी, 15(1): 1-8। **8.** डेका, बी.सी.; थिरुगनवेल, ए.; पटेल, आर.के., नाथ, ए. और देशमुख, एन. (2010)। हॉर्टिकल्चरेल डायवर्सिटी इन नॉर्थ ईस्ट इंडिया एंड इट्स इम्प्रूवमेंट फॉर वेल्यू एडिशन, इंडियन जे. जेनेट। 72: 157-167। **9.** दत्ता, आर.; भगवती, एस. के. और वैश्य, एस. (2018)। ईकथ्यो-फॉनेसटिक डाइवरसिटी ऑफ नॉर्थ ईस्ट इंडिया-स्टेटस् एंड फ्यूचर फीसिंग, चाइम्स, 38: 54-60। **10.** घोष, ए., मलिक, जे., भट्टाचार्जी, एस., और भट्टाचार्जी, डी. (2018)। क्लाइमेट चेंज इम्पेकट ऑन नार्थ ईस्ट इंडिया एंड इट्स मिटीगेशन स्ट्रेटजिस्, इंटरनैशनल जर्नल ऑफ एनवायरनमेंटल साइंसेज, 8(4): 725-741। **11.** सरमा, एन. (2018)। सासटैंनवल एग्रिकल्चर एंड फूड सिक्योरिटी इन नॉर्थ ईस्ट इंडियाः प्रोट्सपेक्टस् एंड चैलेंजर्स, इंटरनैशनल जर्नल ऑफ एनवायरनमेंटल साइंसेज, 8(5): 819-830। **12.** सेन, एन. (2000) ऑकारेंस, डीस्ट्रीब्यूशन, एंड स्टेटस ऑफ डाइवर्सिफाइड फीश फॉना ऑफ नॉर्थ ईस्ट इंडिया। फीश डायवर्सिटी इन नॉर्थ ईस्ट इंडिया में; पोन्निया, ए.जी., सरकार, यू.के., संपादक; एनबीएफजीआर, एनएटीपी प्रकाशनः लखनऊ, भारत : 31-48।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
मेघायल, किलिंग रोड,
9वाँ माइल, री-भाई-793101,
मेघालय, भारत

●

करुणा

दयालु भगवान ने एक बार विचार किया, 'मैं एक बार ऐसे नए प्राणी का निर्माण करूँ जो स्वर्ग और धरती के सभी प्राणियों से उत्तम हो।'

जब सत्य को यह बात मालूम हुई तो उसने कहा– 'ऐसा प्राणी दंभ और बेईमानी फैलाकर आपको बदनाम करेगा।'

न्याय ने कहा– 'वह स्वार्थी बनकर सबको सताएगा।' तब करुणा ने आकर कहा–'भगवन्! ऐसे प्राणी को अवश्य पैदा कीजिए। जब आपके सब दूत उसे सुधारने में असफल होंगे तो मैं उसे सुधारूंगी।'

करुणा की बात मानकर भगवान ने मनोवांछित प्राणी 'मानव' का सृजन किया।

सच है, सत्य व न्याय दंड दे सकते हैं – पर, धरती के लिए एक ही आश्वासन है– वह है 'करुणा'। वह जब भी आ जाती है– बुद्ध बन, गांधी बन, संत बन, पीर-फकीर बन– तब आशा की ज्योति जगती है।

'केवल सत्य नहीं- क्षमा, केवल न्याय नहीं- करुणा।'

यही करुणा– सेवा बन, ममता बन, प्यार बन इस जलती धरती के लिए सावन की रिमझिम वर्षा बनती है।

'एको रसः करुण एव।'

'नीरस रसा न हो।

इसी से नीर देती हूँ।'

- अक्षयचंद्र शर्मा

पाठक-मंच

नेताजी की मृत्यु कब हुयी?

ईयर बुक पत्रिका 2007 के पृ.सं. 323 में लिखा है- नेताजी ने 1939 ई. में क्रांगेस के चुनावों में गांधी प्रत्याशी पट्टाभि सीतारमैया को हरा दिया। गांधी जी के भारी विरोध के चलते इन्होंने क्रांग्रेस छोड़ दी और फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की। 1940 में ब्रिटिश सरकार नें इन्हें कलकत्ता में नजर बन्द कर दिया। 26 जनवरी 1941 को वे एक पठान के वेश में वहाँ से निकल भागे। काबुल व मास्को होते हुये अप्रैल में वे जर्मनी हिटलर से मिलने पहुँचे। वहाँ इन्होंने दक्षिण पूर्वी एशिया में रहने वाले भारतीयों को संगठित किया। 1943 में सुभाष टोक्यो पहुँचे। वहाँ रासबिहारी बोस के नेतृत्व में लगभग 40000, स्त्री-पुरुषों को संगठित कर आजाद हिन्द फौज बनाई। 1944 में यह सेना जापानी सहयोग से रंगून होते हुये भारत के लिये रवाना हुयी। 18 मार्च 1944 को कोहिमा एवं इम्फाल में एक भीषण संघर्ष में यह सेना हार गयी। जापानी वायुसेना का सहयोग नहीं मिला। अगस्त 1945 में जापान की हार के बाद इस सेना का अस्तित्व समाप्त हो गया। इसके कुछ दिन बाद 18 अगस्त 1945 को एक विमान दुर्घटना में सुभाष चन्द्र बोस की मृत्यु हो गयी। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इनका एक नारा 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।' युवाओं में जोश का संचार कर देता था।

दि. 16.3.2016 की राज. पत्रिका के नेशनल-ग्लोबल पत्रिका में नेताजी के बारे में लिखा है कि "नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को लेकर एक दस्तावेज मिला है। जो इस बात की पुष्टि करता है कि नेताजी जापान में हुये विमान हादसे में नहीं मरे थे।" वर्ष 1949-50 के दौरान इतिहासकार प्रफुल्लचन्द्र गुप्त की एक पुस्कत लॉच हुयी थी। इसमें यह बात रिकार्ड में आई कि बोस शायद विमान हादसे में बच गये थे। 28 जून 2011 को विदेश मंत्रालय ने रक्षा मंत्रालय को लिखी एक गोपनीय चिठ्ठी में भी इसका जिक्र किया था। हालांकि इस नोट पर 'एनजीओ' लिखा था, जिसका अर्थ 'नॉट टू गोआउट ऑफिस' था। नेहरू सरकार के समय रक्षा मंत्रालय के इतिहास विभाग ने इस किताब को मंजूरी दी थी। इस साल 23 जनवरी को मोदी सरकार ने जब नेताजी से जुड़ी फाइलों को सार्वजनिक करने की प्रक्रिया शुरू की तो 'आजाद हिन्द फौज' की एकमात्र इतिहास पुस्तक 'अ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन नेशनल आर्मी 1942-45' को जारी करने के लिए कुछ नहीं कहा गया था।

सीटिंग प्लान मिला - इतना तो तय है कि फैजाबाद के जिस गुमनामी बाबा के ट्रैजरी से

निकालकर सामान की सिफ्टिंग की जा रही है, वह मामूली साधु नहीं, वरन रहस्यमय व्यक्तित्व के धनी थे। फैजाबाद के कोषागार में खोले गये मुखर्जी कमीशन के बक्से में नेताजी से जुड़े कई महत्वपूर्ण दस्तावेज मिले हैं। इन दस्तावेजों में उस जहाज का सीटिंग प्लान है, जिसमें दिखाया गया है कि नेताजी किस सीट पर बैठे थे। एक अन्य दूसरे नक्शे में हवाई जहाज की ही कुछ और चीजें हैं। इस नक्शे को कर्नल हबीबुल रहमान ने स्केच से दिखाया है। इसके अलावा नेताजी से सम्बन्धित पत्र और किताबों की कटिंग भी मिली हैं। उस बक्से को मुखर्जी कमीशन ने अपनी जाँच में इस्तेमाल किया था। इस बक्से में से 175 सामानों की जाँच की गयी। सामान में नेताजी पर लिखी किताब 'डिसेंटीएंट रिपोर्ट' भी है। बक्से से खोसला कमीशन की 40 पेज की रिपोर्ट मिली है, जिसमें गवाहों से किये गये सवाल-जवाब हैं।

गुमनामी बाबा - दि. 21.12.2019 की राजस्थान पत्रिका में महेन्द्र प्रताप सिंह ने गुमनामी बाबा के बारे में लिखा है- अयोध्या के सिविल लाइन्स में स्थित राजभवन में एक बाबा रहते थे। इनकी जिन्दगी एक रहस्यमयी थी। यह किसी से मिलते-जुलते नहीं थे। कम बोलते थे। लोग इन्हें भगवान कहते थे। कुछ इन्हें गुमनामी बाबा भी बुलाते थे। 16 दिसम्बर 1985 को इनकी मौत हो गयी। इनकी मौत के दो दिन बाद गुपचुप तरीके से अन्तिम संस्कार कर दिया गया। बाबा के निधन के बाद जब इनका कमरा खोला गया, तब पता चला ये कोई साधारण बाबा नहीं थे। कमरे में जो सामान मिले उससे सबकी आँखें खुली रह गयीं। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस से जुड़ी तमाम वस्तुएँ इनके कमरे में करीने से सजी मिलीं। इसके बाद बड़ी तेजी से कानाफूसी शुरू हुयी कि मरने वाला सख्स नेताजी थे। वही नेताजी जिनकी मौत 23 जनवरी 1945 को जापान में एक विमान दुर्घटना में हुयी थी। बाद में शहर फिर देश-विदेश में गुमनामी बाबा की चर्चा होने लगी। हवा पश्चिम बंगाल तक पहुँची। असलियत जानने के लिये नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के भाई सुरेश चन्द की बेटी ललिता बोस और अन्य परिवार जन अयोध्या आये। यहाँ उन्हें नेताजी की तरह के दर्जनों चश्में, 555 सिगरेट और विदेशी शराब का बड़ा जखीरा मिला। रोलैक्स जेब घड़ी मिली। आजाद हिन्द फौज की यूनिफार्म मिली और बहुत कुछ मिला, जो यह साबित करता था कि हो न हो वे नेताजी ही थे, जो गुमनामी बाबा बनकर रह रहे थे। असलियत जानने के लिए ललिता बोस ने 1986 में इलाहाबाद हाईकोर्ट में एक याचिका दायर की, जिसमें कहा गया कि गुमनामी बाबा ही नेताजी थे। 2010 में कुछ और याचिका दायर हुयीं। फिर 31 जनवरी 2013 को कोर्ट ने कहा, गुमनामी बाबा की जाँच के लिए एक आयोग बने।

इसके बाद राजयपाल के पहल पर 28 जून 2016 को सरकार ने जस्टिस विष्णु सहाय की अध्यक्षता में एकसदस्यी जाँच आयोग बनाया। इसी जाँच आयोग ने यह रिपोर्ट सौंपी है।

1999 में सुप्रीम कोर्ट के रिटायर्ड जज मनोज मुखर्जी आयोग ने भी नेताजी की मौत पर 6 मई 2006 को एक रिपोर्ट दी थी, जिसमें कहा गया था कि नेताजी की मौत विमान दुर्घटना में नहीं हुयी थी। हालांकि इस रिपोर्ट को केंद्र सरकार ने अस्वीकार कर दिया था। कांग्रेस सरकार ने साक्ष्यों की अवहेलना करके किसी मजबूरी में उक्त रिपोर्ट को अस्वीकार किया है, सत्य यही है कि जापानी विमान दुर्घटना में 23 जनवरी 1945 में नेताजी की मृत्यु नहीं हुयी थी।

- डॉ. रामकिशन पोहिया
वरिष्ठ शोध अधिकारी
152, दीनदयालनगर, आर.बी.एम.
अस्पताल के पीछे, भरतपुर-321001 (राज.)

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी.आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। **संपादक-डॉ. बाबूलाल शर्मा।**

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

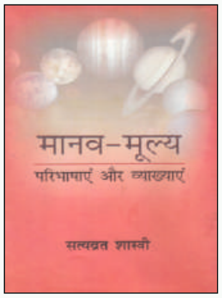

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

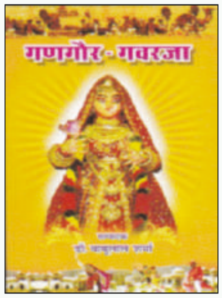

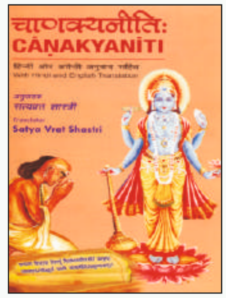

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

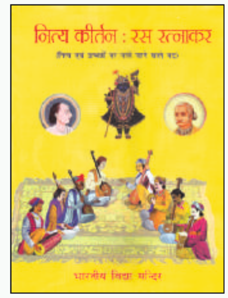

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

मरुधरा के मोती
पुष्पा गोस्वामी
मूल्य 2250/- पृ.सं. 140

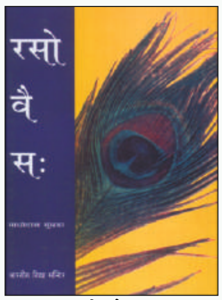

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

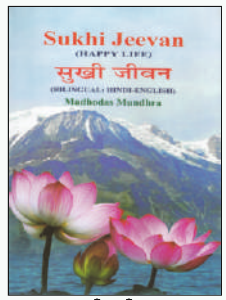

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

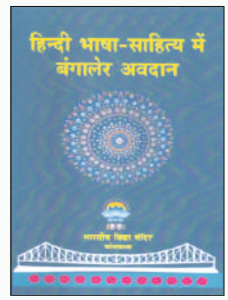

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

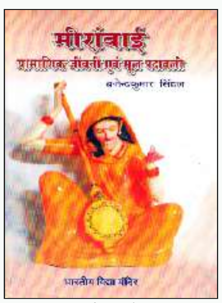

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

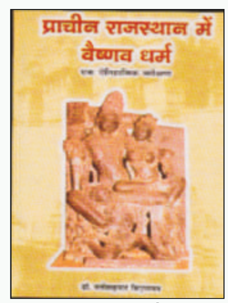

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

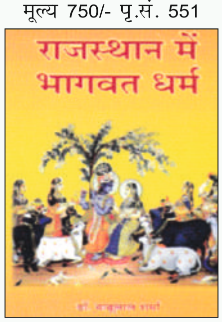

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

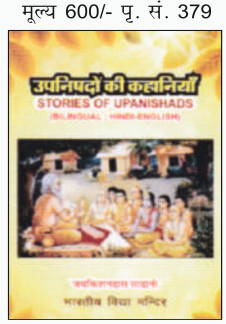

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

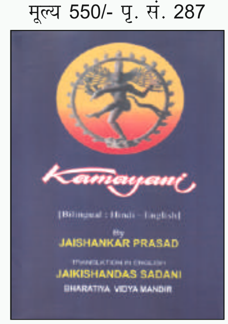

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

From
BHARATIYA VIDYA MANDIR
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata - 700087 *(W.B.)*

TO

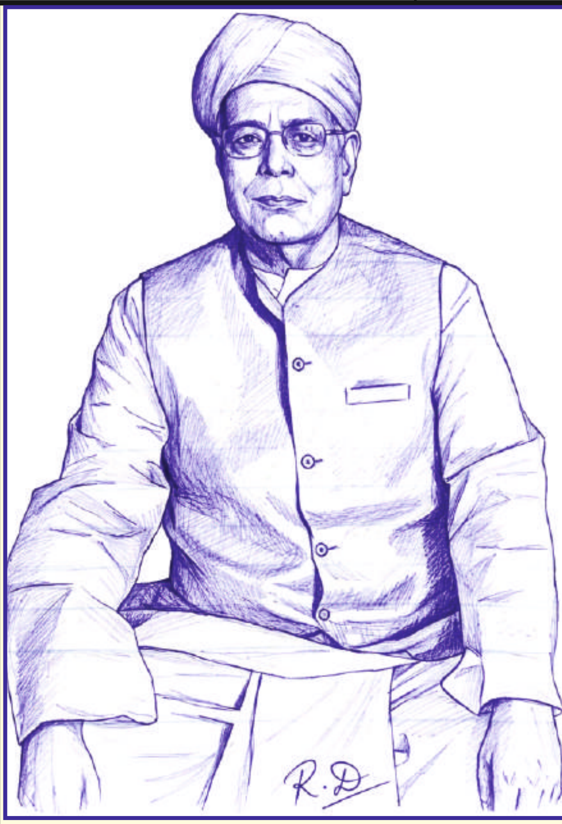

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा (संस्था अध्यक्ष-प्रधान संपादक) के 84वें जन्मदिवस के शुभ अवसर पर भारतीय परंपरागत पहनावे में उनका गरिमामय कलात्मक चित्र बनाकर प्रेषित किया है राजेश दमानी ने, सुपुत्र श्री शिवकिशन दमानी (वैचारिकी के वरिष्ठ पाठक)।

अध्यक्ष डॉ. बी.डी. मूंधड़ा जी द्वारा कश्मीर महाराजा डॉ. कर्ण सिंह जी को भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'कामायनी' एवं शोध पत्रिका 'वैचारिकी' का नवीन अंक प्रदान करते हुए, बायें में सचिव श्री शंकर सोमानी परिलक्षित हैं उनके दिल्ली निवास में।

दाहिने से श्रीमती यमुना मूंधड़ा, अध्यक्ष डॉ. बी.डी. मूंधड़ा, श्री शिवकिशन दमानी, श्रीमती शान्ती देवी दमानी एवं संसद उपाध्यक्षा डॉ. तारा दूगड़ भावी कार्यक्रमों की रूपरेखा पर विचार-विमर्श करते हुए परिलक्षित हैं।

संसद न्यासी श्री राजगोपाल सुरेका द्वारा प्रतिष्ठित व्यंग्यकार-उपन्यासकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी (पद्मश्री) को अंगवस्त्र प्रदान कर अभिनन्दन करते हुए एवं डायस पर श्री प्रियंकर पालीवाल।

प्रतिष्ठित व्यंग्यकार-उपन्यासकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी (पद्मश्री) को संसद सभागार में तुलसी वृक्ष प्रदान कर सम्मानित करते हुए संसद उपाध्यक्षा डॉ. तारा दूगड़।